चन्दामामा
फ़रवरी १९८९

Parry's
PARRYS
लो हम फिर आ गये !
तुम ज़रूर इंतज़ार में होगे कि इस बार हम क्या-क्या लाए हैं। हम लाए हैं कैरामिल्क, कॉफ़ी बाइट और ट्राइ मी...और इनके साथ ढेर-सी मौज मस्ती भी!
Try-Me
CARAMILK
COFFY BITE
Parry's
THE KING OF SWEETS
पासा फेंको, लेडी बर्ड बनाओ !
यह खेल बड़ा मज़ेदार है. इसकी मौज-मस्ती भी दोहरी है...चित्र बनाने का मज़ा और पासा फेंकने की मस्ती,
ज़रूरत का सामान: एक पासा,
कागज का टुकड़ा (हर खिलाड़ी के लिए),एक पेंसिल या काला फेल्ट पैन(हर खिलाड़ी के लिए)
CARAMILK
खिलाड़ियों को लेडी बर्ड (भौंरे का-सा कीड़ा) का चित्र बनाना होगा. इसके १३ हिस्से हैं. हर हिस्से के अलग अंक नियत हैं. पासे पर बने अंकों के अनुसार ही लेडी बर्ड के अंगों के अंक नियत किए गए हैं, जो इस प्रकार हैं.
१=शरीर • ३=छह में से हर टांग. • ५=दोनों एंटीनाओं (मूंछों) में से हर एक. २=सिर • ४=दोनों में से हर आंख • ६=पूंछ
यह खेल कितने भी खिलाड़ी खेल सकते हैं. हर खिलाड़ी बारी-बारी पासा फेंकेगा जब तक शरीर नहीं बनेगा, तब तक दूसरे अंग नहीं बनाए जा सकते. शरीर के लिए पासे का १ आना जरूरी है. यह भी ध्यान रहे कि आंखें और एंटीना (मूंछ) तभी बनाए जा सकेंगे जब सिर बन जाए, जो भी लेडी बर्ड की तस्वीर इस तरह सबसे पहले पूरी कर लेगा, वही जीत जायेगा. इसके बाद खेल फिर से शुरू किया जा सकता है. तुम चाहो तो इसी खेल को किसी दूसरे जीव-जंतु की तस्वीर के साथ भी खेल सकते हो. उदाहरण के लिए, मछली का चित्र ले लो. इसी तरह, जिसका चाहो, उसका चित्र बनाते चले जाओ... नये-नये पशु-पक्षी, नये-नये खेल!

PAGE
पैरीज़ टॉफ़ियां और बिस्किट- हर किसी को भायें.
एक घंटे में इतना सब कुछ!
क्या तुम जानते हो?!
पैराशूट उड़ाओ!
ज़रूरत का सामानः
एक बड़ा रूमाल या पेपर नैपकिन, पतला धागा, छोटा कॉर्क, कागज़ की शीट, कैंची, सेलोटेप, रंग, फेल्ट-पैन या क्रेयंस.
फ़िल्मों और किताबों में दिखाए गए हवाबाजों (पैराट्रूपर्स) को देख कर तुम्हारा दिल भी मचलता होगा! तो आओ, हम सिखाते हैं तुम्हें पैराशूट बनाना!
धागे के ३०-३० सेंटीमीटर (१२ इंच) लंबे चार टुकड़े ले लो. रूमाल के चारों कोनों पर धागे का एक एक टुकड़ा बांध दो (जैसा कि चित्र १ में दिखाया गया है.) धागे का एक टुकड़ा कॉर्क के बीचोंबीच भी कस कर बांध दो. अब रूमाल में बंधे धागों को कॉर्क में बंधे धागे के साथ जोड़ दो, (जैसे कि चित्र-३ में दिखाया गया है.) कागज पर पैराट्रूपर की आकृति बना लो और उसे काट कर टेप से कॉर्क पर चिपका दो (देखें चित्र-४). हो गयी सारी तैयारी! अब इस हवाबाज़ को सीढ़ियों के ऊपर या खिड़की या किसी भी ऊंची जगह से ऊंचा उड़ा दो और उसे हवा में तैरते नीचे आते देखने का मज़ा लेते रहो!
FIG. 1
FIG. 2
FIG. 3
FIG. 4
Try-Me
ये सच है!
चिड़ियां जमीन पर बैठकर कभी गाना नहीं गातीं. गाना तो वे पेड़ की टहनी पर झूलते हुए ही गाती हैं.
यह छाया, इनमें से किस मछली की है?
ये छाया, मछली १, मछली २, मछली ३, मछली ४, या मछली ५ की है?
1
2
3
4
5
Parry's
THE KING OF SWEETS
CUT AND KEEP

मोड़ो और पता लगाओ

छुक-छुक गाड़ी खज़ाना लाये
देख जिसे कोई मुस्कराये
बच्चे जिससे ज़्यादा स्वाद और ज़्यादा ताक़त पायें
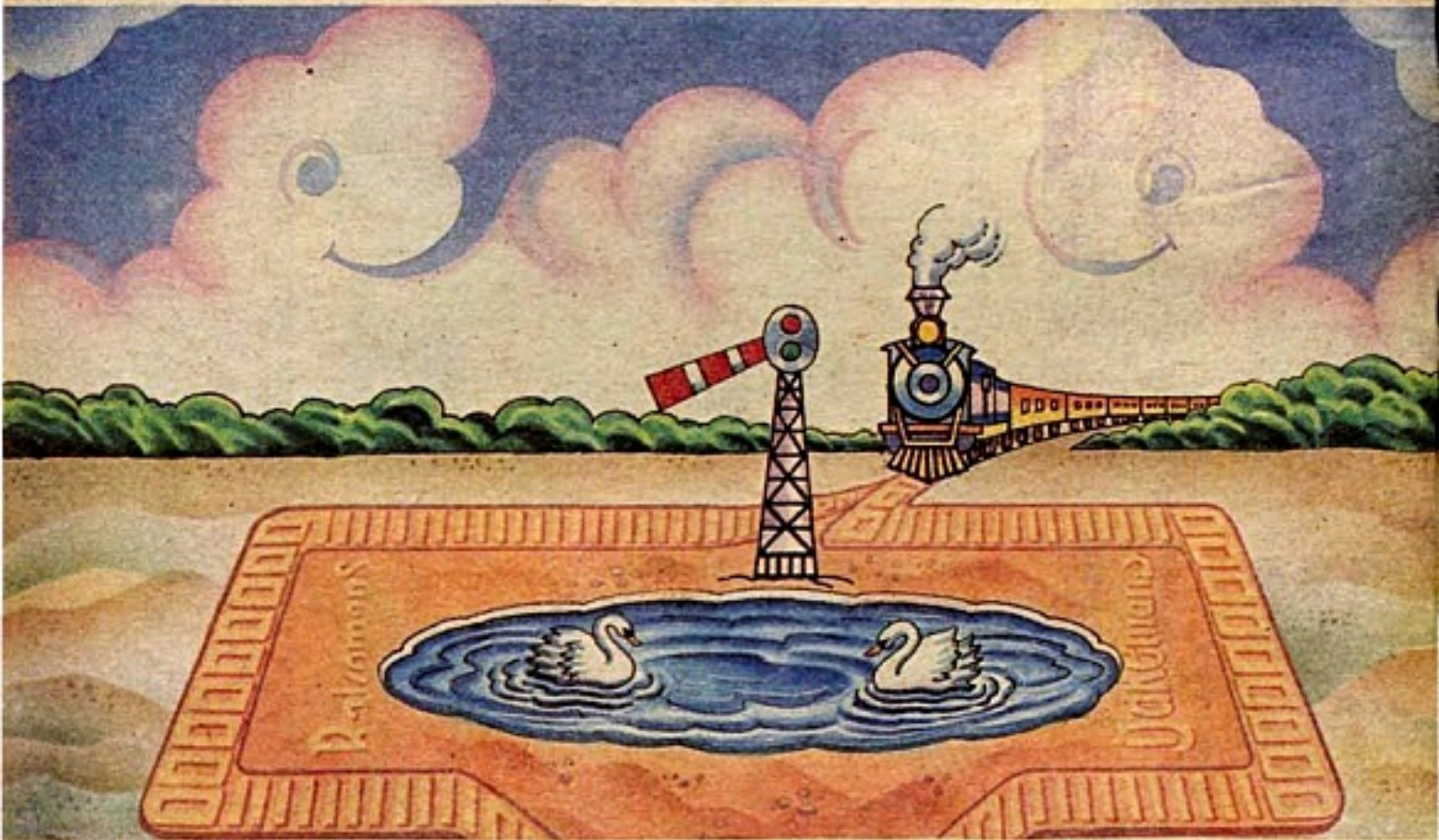
A▶ मोड़कर "A" और "B" को मिलाओ ◀B

संकेत :
पेश है नई चीज़
जिसमें है प्लस!

नया!
ग्लूकोस प्लस बिस्कुट

ज़्यादा स्वाद, ज़्यादा ताक़त

OBM/298/Hin/1

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

हमारा देश इस समय पं. जवाहरलाल नेहरू का शत-जयन्ति-उत्सव मना रहा है । यह सूचित करते हुए हमें बड़ा हर्ष हो रहा है कि हम इस अंक से जवाहरलालजी की जीवनी को चित्र-कथा के रूप में प्रकाशित कर रहे हैं । यह जीवनी उस महत् व्यक्ति के जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं के साथ हमारे देश के हाल का इतिहास भी प्रस्तुत करेगी ।

अमरवाणी

विरला जानन्ति गुणान्, विरलाः कुर्वन्ति निर्द्धन-स्नेह
विरला रणेषु धीराः, पर दुःखेनापि दुःखिता विरलाः ।

[ऐसे लोग विरले ही होते हैं, जो दूसरों की महानता को समझ सकते हैं, गरीबों से मित्रता रखते हैं, युद्ध में साहस पूर्वक लड़ते हैं और दूसरों के दुख को अपना दुख मानते हैं]

वर्षः ४१ फरवरी १९८९ अंकः ६

एक प्रतिः ३.०० वार्षिक चन्दाः ३६.००

जेम्स बॉन्ड के धमाकेदार कारनामें

चन्दामामा के सम्वाद

आयु बढ़ानेवाली नीन्द

सायबीरिया के सुवर्ण-खदानों में कार्यरत कुछ मज़दूरों ने घनीभूत जल के बीच ७० वर्षों से निद्रा में मग्न "लिमोबिडे" नामक एक प्राणी देखा । उसका कलेजा उसके कुल वज़न के एक तिहाई वज़न का होता है । साधारणतया इस प्राणी की आयु दस वर्ष की होती है । मगर सुदीर्घ निद्रा के कारण उसकी आयु बढ़ गयी है । इस जानवर को ले जाकर साधारण तापमानवाले पानी में छोड़ते ही वह सहजता से नीन्द से जाग गया ।

टालस्टाय का कण्ठस्वर

सन १९०८ में अमेरिका के वैज्ञानिक थामस अल्वा एडिसन ने लिओ टालस्टाय के कंठस्वर के जो रिकार्ड कर रखे थे, उनका हालही में पता लगाया गया है । उन रिकार्डों को रूस में मँगवाया गया है । आज तक यह धारणा थी कि अमेरिका के एडिसन सेंटर में १९१४ में जो अग्निकांड हुआ था, उसमें ये रिकार्ड भी भस्म.हो गये हैं ।

मनुष्य और हाथी

इंग्लैंड के मार्क षांड नामक लेखक ने कोणार्क के सूर दर से लेकर बिहार के सोनेपुर तक, लगभग १००० कि. की दूरी की यात्रा केवल हाथी पर की है । मनुष्य तथा हा का सम्बन्ध, महावत हाथी पर. कैसे नियन्त्रण करते हैं और हाथियों को पालतू कैसे बनाया जाता है - इन सारी बातों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिये ही उसने यह यात्रा हाथी पर ही की ।

वास्तव में वह प्राचीन है क्या ?

कहा जाता है कि, ईसा मसीह को सूली पर चढ़ाने के बाद उनके शरीर पर जो शाल उढ़ाया गया था, वह इटली के टुरीन चर्च में पाया गया है । लेकिन हालही में जिन तीन विश्व-विद्यालयों ने अनुसंधान किया उससे यह पता चला है कि वह अवश्य उतना प्राचीन नहीं है; बल्कि १४ वीं शताब्दि का है ।

धन और दान

शिवपुरी गाँव में धर्मचन्दन नाम का एक पंडित रहता था । उसकी पत्नी रमादेवी परम कंजूस थी । वह एक पाई भी खर्च किये बिना अधिक से अधिक पुण्य जोड़ना चाहती थी ।

एक दिन झाड़ू बेचनेवाली एक औरत उस के मकान से होकर गुज़र रही थी । उसको बुलाकर एक पुरानी साड़ी रमादेवी ने उसके सामने रखी और पूछा, "यह साड़ी लेकर कितने झाड़ू दोगी ?"

"दो !" उस बूढ़ी औरत ने कहा ।

"क्या कहा ? एक साड़ी के दो ही झाड़ू ? छीः छीः ! यही साड़ी अगर किसी गरीब औरत को दान में दे दूँ, तो मुझे बहुत सा पुण्य प्राप्त होगा । अच्छा, बोलो एक रुपये में कितने झाड़ू दोगी ?" रमादेवी ने पूछा ।

"चार !" बूढ़ी ने कहा ।

रमादेवी ने एक रुपया देकर चार झाड़ू खरीदे । बूढ़ी वहाँ से जब जाने लगी, तब उसने साड़ी भी अपने कन्धे पर डाल ली ।

यह देख रमादेवी गुस्से में आकर बोली, "अै ? धन के साथ साड़ी भी उठा ले जा रही हो ? वाह रे वाह, क्या चालाक हो तुम भी !"

बूढ़ी धीरे से हँस पड़ी और बोली, "माई जी, आप तो बड़ी धर्मात्मा हैं । मुझे जैसी ग़रीबिन को साड़ी देकर आप ने बहुत सा पुण्य कमाया है । धन देकर आप ने घर के लिये झाड़ू खरीदे । "

विस्मय में आकर रमादेवी बूढ़ी औरत की ओर ताकती ही रही !

जीत की हार

रामनगर में महेश नाम का एक कृषक युवक रहा करता था । वह स्वयम् अत्यन्त मेधावी तथा शौकीन स्वभाव का था । साथ ही वह सुन्दर, संपन्न व बुद्धिमान भी था । इसी कारण अनेक गृहस्थ अपनी अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कराने के लिये ललचा रहे थे । पर महेश ने उनमें से किसी भी लड़की से विवाह करने से साफ़ इन्कार कर दिया ।

अपने पोते का यह बर्ताव उसके दादा रामनाथ को बिल्कुल अच्छा न लगा । उसने एक दिन महेश को पास बुलाकर कहा, "देखो बेटे, इस प्रकार देखी हुई हर कन्या से विवाह करने से इन्कार किया तो तुम्हारी शादी कब होगी ? तुम्हारी माँ को आराम कब मिलेगा ?"

अपने दादा की इस बात पर हँसकर महेश बोला, "दादाजी, क्या माँ को कामकाज में मदद दिलाने के लिए ही मेरी शादी कराना चाह रहे हैं ? यह बात पहले से ही मालूम होती, तो मैं कभी का एकाध अच्छी सी नौकरानी के गले में मंगलसूत्र बाँधकर उसे अपने घर ले आता ! "

अपने पोते की इस विचित्र बात पर हँसकर रामनाथ बोला, "अरे, इन बातों को रहने दो । मगर याद रखो, तुम हर लड़की में ऐब दिखाकर शादी करने से इन्कार करते रहोगे, तो आख़िर तुम अपनी दादी जैसी औरत के चंगुल में फँस जाओगे । "

रामनाथ की यह बात सुनकर महेश की दादी बोली, "हाँ बेटा महेश ! सीमित संपत्ति-वाले परिवार में रहकर सब प्रकार के सुख प्रदान करनेवाली औरत ज़हर के बराबर होती है न ?"

महेश मुस्कुराकर बोला, "सूर्योदय से लेकर रात तक पूरा दिन पत्नी के बल पर ही तो गृहस्थी के काम-काज चलते रहते हैं । दादाजी, चाहे सदा घर के कामों में लगी रहनेवाली हो, मगर लड़की में थोड़ी-बहुत

अरुणा यशपाल

चुस्ती और बुद्धिमता तो होनी चाहिये न ? ऐसी लड़की जब मिलेगी, तभी मैं शादी करूँगा । ''

उन्हीं दिनों, एक दिन रामनाथ का एक वृद्ध दोस्त गुरुनाथ, जो पड़ोस गाँव में रहता था, रामनाथ को देखने आ पहुँचा । दोनों में बातचीत शुरू हुई । उस वक्त उत्साहपूर्वक इधर उधर टहलनेवाले महेश को देखकर गुरुनाथ ने पूछा, "अरे रामनाथ, यह लड़का तुम्हारा पोता महेश तो नहीं ?"

"हाँ हाँ दोस्त, यह लड़का मेरे ज्येष्ठ पुत्र मल्लिनाथ का बेटा महेश ही है । ''रामनाथ ने कहा ।

"ओह, ऐसी बात है ! यह तो जवान हो गया है । इस की शादी की बात चल रही है या नहीं ?" गुरुनाथ ने पूछा ।

रामनाथ ने अपने पोते की करतूत का परिचय दिया ।

इसपर गुरुनाथ ने चकित होकर कहा, "तब तो बड़ी अच्छी बात है । यह भी तो मेरी पोती गौरी जैसा ही चतुर है । ''

"क्या तुम्हारी पोती भी ऐसी अक्लमन्द है ?" रामनाथ ने पूछा ।

"अबे, पोती किसकी है ? गुरुनाथ को तुम ने क्या समझ रखा है ? अरे, मेरी गौरी की अक्लमन्दी के सामने तुम्हारे पोते की ऐसी की तैसी !" गुरुनाथ ने गर्व से कहा ।

गुरुनाथ की बातों से रामनाथ भी जोश में आ गया । फिर बोला, "तब तो मेरे पोते को ही इस बात का फैसला करने दें । ''

आखिर यह निश्चित हुआ कि महेश अकेला ही गुरुनाथ के साथ उसके घर जाएगा और यदि उस को गौरी पसन्द आये तो वह उस के साथ शादी करेगा ।

इसके बाद वे दोनों चल पड़े । घर में प्रवेश करते ही गुरुनाथ ने परिवार के सभी सदस्यों के नाम लेकर सब को पुकारा और सब से महेश का परिचय कराया, - "यह लड़का मेरे मित्र रामनाथ का पोता है । ''

बाद में अपनी पोती की ओर देखते हुए वह बोला, "गौरी, मेरे दोस्त रामनाथ अपने पोते की अक्लमन्दी पर फूले नहीं समा रहे हैं । मैंने तो यह दाँव लगाया है, कि मेरी पोती भी तुम्हारे पोते से किसी भी बात में कम नहीं है । और यह कहकर ही मैं उसके इस पोते-महेश

को अपने साथ ले आया हूँ ।'

अपने दादा की बातों में ध्वनित विशेष भाव को गौरी ताड़ गयी और संकोच से उसका चेहरा लाल हो गया, आँखें नीची हो गयीं । अत्यन्त आकर्षक और चुस्त गौरी को देख महेश को लगा कि लड़की अक्लमन्द और चुस्त प्रतीत होती है ।

गौरी को देख मन्दहास करते हुए महेश बोला, "सुनो, मुझे बहुत प्यास लगी है । निकाले बिना, भरे बिना, मनुष्य के हाथों की पहुँच के ऊपर स्थित मीठा जल पिला सकोगी ?"

मुस्कुराकर, सिर हिलाते गौरी बोली, "अभी पलभर में ले आती हूँ । क्या आप उस जल को वैसे ही पी जायेंगे, या मनुष्य के द्वारा निर्मित वस्तु के सहारे पियेंगे ?"

"वैसे ही पी नहीं सकता । गिलास में ले आओ ।" महेश उत्तर में बोला । उसने ताड़ लिया - लड़की तो होशियार लगती है ।

थोड़ी ही देर में गौरी लोटा भर नारियल का पानी ले आयी । सब ने गौरी से पूछकर जान लिया कि लोटे में नारियल का पानी है, तब वे आश्चर्य में आ गये ।

'बेटे, क्या तुम ने यही जल पूछा था ?" प्रशंसा भरी दृष्टि से देखते हुए गुरुनाथ ने पूछा ।

इस पर गुरुनाथ को चुनौती देते हुए महेश ने कहा, "आप अपनी पोती से कहिये कि अधमरी के लिये पूर्णरूप से मरनेवाली के द्वारा सुखपूर्वक जीनेवाले कौन होते हैं ?"

गौरी तत्काल बोली, "अच्छी बात है, बता दूँगी । मगर इससे पहले आप यह बताने का कष्ट करें कि, इस प्रकार सुखपूर्वक जीनेवाले

लोग कितने दिनों में एक बार आपके घर आते हैं ?"

"छीः छीः, वे लोग हमारे घर कभी नहीं आते । '' मुँह सिकोड़कर महेश तुरन्त बोल उठा ।

"हाँ समझ गयी हूँ । अध मरनेवाले प्राणी आमिष हैं, उनकी खोज में आकर पूर्णरूप से मरनेवाली मछली है; और उन मछलियों को बेचकर सुखपूर्वक जीनेवाले लोग मछुआरे !" गौरी ने सहजता से कहा ।

अपनी पोती की अक्लमन्दी पर खुश होकर गुरुनाथ ने महेश से पूछा, "अब तुम्हारी परीक्षा समाप्त हो गयी है न ?"

"नहीं जी, एक प्रश्न और है । '' यह कहकर उसने गौरी से पूछा, "सुनो, प्रथम वस्तु का सेवन करने पर ही हमारी ज़िन्दगी गुज़रती है । दूसरी चीज़ के न रहने से गाँव के किसी भी घर में धोबन न आयेगी । तीसरी व चौथी वस्तु के न होने से हम जीवित नहीं रह सकते और अगर ये अधिक मात्रा में हो जायें अथवा एक दूसरे के सहायक बने तो सर्वनाश करेंगी । अब रही पाँचवीं वस्तु - वह तो अनन्त है । अच्छा, अब बताओ ये पाँच चीज़ें क्या क्या हैं ?"

गौरी ने मृदुल मंद हास किया, फिर नतमस्तक हो जवाब देने की असमर्थता स्वीकार करते हुए सिर हाथों में छिपा लिया ।

महेश ने विजय-गर्व से एक बार गुरुनाथ की ओर देखा और फिर हँसकर बोला, "मैं और मेरे दादा ही जीत गये न ? दाँव की वस्तु कहाँ है? ''

गुरुनाथ की समझ में न आया कि क्या उत्तर दें । वह तो पसोपेश में पड़ गया ।

यह भाँपकर महेश बोला, "हमें कुछ नहीं चाहिये । आप की गौरी को हमारे घर की बहुरानी बनाकर भेज दीजिये; बस !"

इस के एक महीने के अन्दर ही गौरी और महेश का विवाह बड़ी धूमधाम से कराया गया ।

विवाह के बाद गौरी ससुराल पहुँची । एक दिन उसने पति से कहा, "अजी सुनिये, आप से एक बात करनी है । ''

"अच्छा? बताओ क्या बात है ?" महेश ने उत्सुकता से पूछा ।

"अं, विवाह के पूर्व, उस दिन आप ने मुझ

से कुछ पूछा था न, वह । '' यह कहकर गौरी हँस पड़ी और बोली, "आप ने पाँच वस्तुअें पूछी थी न? वे वस्तुएँ हैं - पृथ्वी, आप, तेज, वायु और आकाश ! वही पंचमहाभूत ! पहली चीज़ है पृथ्वी - पृथ्वी की सेवा करके फसल पैदा करने से ही हम जीवित यह सकते हैं । दूसरी चीज़-आप-याने की पानी; इसके बिना कलि याने धोबी किसी के घर नहीं आएगा । तीसरी और चौथी हैं तेज और वायु । आग के - तेज के और वायु के बिना हम जी नहीं सकेंगे । मगर दोनों की अधिकता होने से या दोनों एक दूसरे के सहायक बनने से तो प्रलय होगा - सर्वनाश होगा ! पाँचवीं वस्तु आकाश अनंत है । '' गौरी ने कहा ।

सही उत्तर सुनकर महेश ने चकित होकर पूछा, "सही उत्तर जानकर भी तुम ने उसी दिन जवाब क्यों नहीं दिया ?"

"आप ने पहले जो दो प्रश्न पूछे, उन के सही उत्तर पाकर आप ने तो ऐसा चेहरा बनाया मानों आप हारते जा रहे हैं । आप ने आखिरी सवाल इस ढंग से किया कि कम से कम इस अंतिम अस्त्र से ही क्यों न हो, शत्रु को पराजित करने की लगन आप रख रहे हैं । तब तक मेरे मन में यह विश्वास घर कर गया था कि मैं आप को पसन्द आ गयी हूँ और आप के अन्तिम प्रश्न का सही उत्तर न पाने पर भी आप मेरे साथ शादी अवश्य करेंगे ही । इसलिये मैंने ऐसा अभिनय किया कि मैं आप के सवाल का जवाब देने में असमर्थ हूँ ! इस प्रकार मैंने आप को विजय दिलायी । हम औरतें यही चाहती हैं कि हम से हमारे पति बढ़कर रहें । ''

पत्नी की बुद्धिमता और चालाकी पर मन ही मन प्रसन्न होकर महेश बोला, "इस का मतलब है कि मैं हार गया हूँ । यही न ?"

"मैं क्या जानूँ ! आप जीतकर हार गये या हारकर जीत गये ? आप ही जानें " गौरी बोली ।

महेश संतुष्टि पूर्वक हँसकर बोला, "हार कर जीत गया हूँ । परीक्षा में हार कर ही तो मैंने तुमको जीत लिया है । ''

नेत्रलेपन

विश्वनाथ नाम का वैद्य बीमारियों का निदान करने तथा इलाज करने के लिए भी विशेष मशहूर था । वह रोगियों से पत्र-पुष्प के रूप में ज़्यादा रकम की आशा नहीं रखता था । एक दिन अटारी पर सुरक्षित रखे अपने पूर्वजों के ताडपत्र-ग्रंथों को उतार कर उन का अवलोकन करने लगा, तो उन में 'नेत्र-लेपन' नाम से एक औषध तैयार करने की विधि उसको बहुत आकर्षक प्रतीत हुई । पूर्वजों ने औषधि-विद्या में जो प्रगति की थी, उसे देखकर उसे आश्चर्य हुआ । उस लेपन को आँख में मलने से ज़मीन के अन्दर निक्षिप्त हर चीज़ दिखाई देती है – ऐसा उल्लिखित किया हुआ था ।

कुतूहलवश विश्वनाथ आवश्यक जड़ी बूटियाँ ले आया और उन्हें कल्व में पीसकर नेत्रलेपन तैयार किया । इसके बाद ग्रन्थ में लिखे अनुसार अमावास्या तथा इतवार इकट्ठे पड़नेवाला दिन देखकर उस लेप को काजल की तरह अपनी आँखों में लगा कर वह गाँव के बाहर के खेतों में गया । उसने सोचा – ग्रंथ में लिखे अनुसार औषधि गुणकारी सिद्ध नहीं हुई तो ज़रूर मेरी निर्माण-प्रक्रिया में कुछ त्रुटि रह गई । पर आश्चर्य की बात है कि उसे ज़मीन के गर्भ में स्थित सारी चीज़ें उस को स्पष्ट दिखाई देने लगीं । एक स्थानपर हरे मैदान में एक पुरुष जितनी गहराई में अशर्फियों से भरी हँडियाँ नज़र आयी । अशर्फियोंवाली ज़मीन वहाँ के ज़मीनदार जगतसिंह की थी । कानूनन पृथ्वी के अन्दर छः फूट की गहराई तक प्राप्त होनेवाली चीज़ उस ज़मीन के मालिक की होती है । इसलिये ज़मीनदार को यह बात बताने का निश्चय कर के विश्वनाथ ने उस स्थानपर चिन्ह के रूप में एक छड़ी गाड़ दी और घर की ओर चल पड़ा ।

विश्वनाथ उस रात को यह विचार करके सो गया कि कल सबेरे जागते ही पहले ज़मीनदार के घर जाकर उन अशर्फियों के बारे में

किशोर रस्तोगी

जानकारी दे । आधी रात के करीब उसकी खटिया के पास कोई आहट हुई । विश्वनाथ ने आँखें खोलकर देखा – सामने हवा में तैरता हुआ एक भूत दिखाई दिया ।

विश्वनाथ पहले ज़रा घबडायासा लगा, मगर फिर हिम्मत बाँधकर उसने पूछा, "तुम कौन हो ? मुझ से तुम्हारा क्या काम है ?"

तीक्ष्ण दृष्टि से उसकी ओर देखते हुअे भूत बोला, "ओह, तुम ऐसे भोले हो, जो मुझे देखकर भी पहचान नहीं पाते हो ? हाँ, मैं भूत हूँ; तिसपर भी मैं अत्यन्त दुष्ट जाति का हूँ । "

"अच्छी बात है, तुम अगर भूत हो, तो मुझ जैसे मानव के साथ तुम्हारा क्या है ?" ज़रा भी विचलित न होते हुए विश्वनाथ ने उल्टा सवाल किया ।

इस बार भूत ठठाकर हँस पड़ा और बोला, "तुम यह मत सोचो कि मैं तुम्हारे साथ शास्त्र-संबंधी बातें करने आया हूँ । तुमने आज गाँव की सीमा पर बंजर भूमि में एक स्थान पर एक सूखी छड़ी गाड़ दी है न ?"

"तो क्या? यह कोई अपराध है ? यूँ ही कुछ सूझ नहीं रहा था, इसलिये ऐसा किया । " विश्वनाथ ने भोला बनते हुए जवाब दिया ।

जवाब सुनकर भूत आँखें तरेरकर बोला । "क्या तुम मुझे धोखा दे रहे हो ? तुम ने ज़रूर किसी प्रकार पता लगा लिया है, कि वहाँ ज़मीन के अन्दर अशर्फियों की हाँडियाँ दबी पड़ी हैं । लेकिन एक बात अच्छी तरह याद रखो कि, तुम को जो ख़ज़ाना दिखाई दिया है, उसे मैंने अपने वारिस के लिये दबाकर रखा है । वह मेरे पोते माधव को प्राप्त होना चाहिये । यदि कोई और व्यक्ति वह ख़ज़ाना हड़प करना चाहेगा तो मैं उसका सर्वनाश करके रहूँगा ।" इतना कहकर भूत गायब हो गया ।
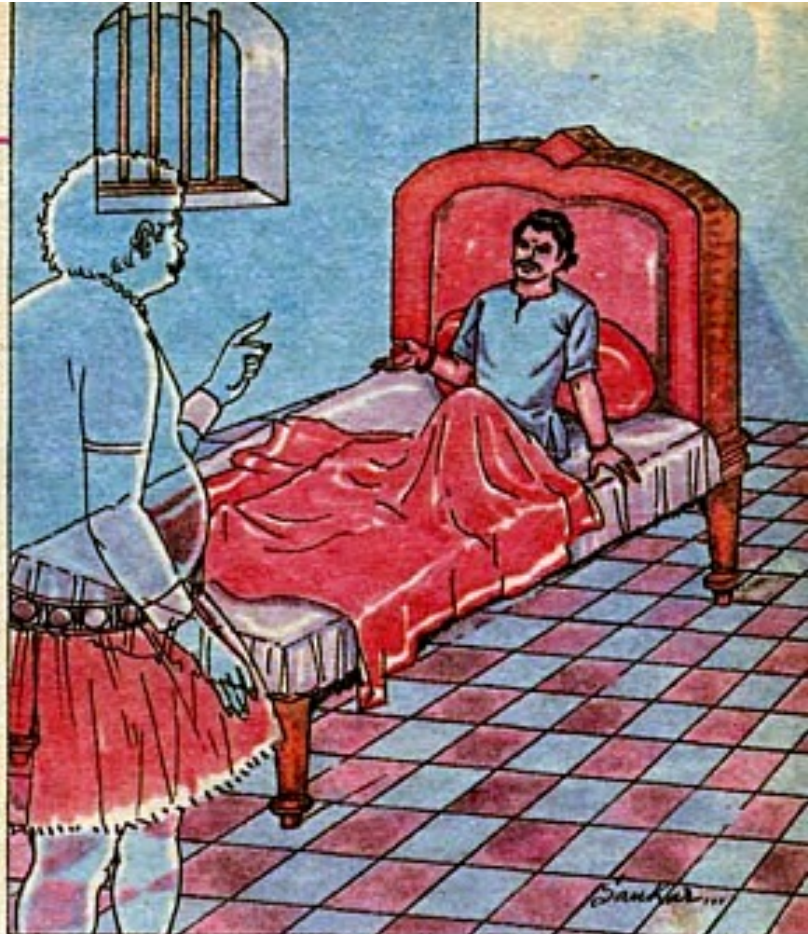
भूत की यह चेतावनी पाकर भी विश्वनाथ डरा नहीं; पर अब उसके मन में एक धर्म-संकट पैदा हुआ । भूत के कहे मुताबिक किसी ज़माने में वह ज़मीन माधव के दादा परदादाओं की थी । लेकिन अपने स्वामित्वकाल में फिज़ूल खर्ची करके उन्होंने सारी ज़मीन-जायदाद बेच डाली और कंगाल बन बैठे । इस प्रकार वह ज़मीन इस

ज़मीनदार के हाथ आ गयी । इसलिये अब उस ज़मीन के मालिक ज़मीनदार को वह ख़ज़ाना प्राप्त कराये बगैर माधव को दिलाना न्याय-संगत नहीं है । लेकिन अब किया क्या जाय ? विश्वनाथ उस रात को सो नहीं पाया; रातभर वह सोचता रहा और आखिर वह एक निर्णय पर पहुँचा ।

दूसरे दिन सुबह विश्वनाथ पाँच सेर कच्चे चने, एक शिवलिंग, कुदाल तथा फावड़ा लेकर उस मैदान में पहुँचा । वहाँ गड़े ख़ज़ाने से थोड़ी दूर डेढ-दो फुट गहरा गड्ढा खोदा और उसमें चने डालकर ऊपर शिवलिंग रखा और गड्ढे को मिट्टी से भरकर घर लौट गया ।

नीचे के चने भीग जाने से शाम तक शिवलिंग का आधा भाग ज़मीन के ऊपर उठ आया । अचानक ज़मीन पर शिवलिंग देखकर किसी ने यह ख़बर गाँव में पहुँचा दी ।

बस ! ज़मीन में शिवजी का अवतरण हुआ - मानकर लोग उस लिंग की पूजा करने लगे !

अपनी योजना सफल होते देख खुश होकर विश्वनाथ गाँव के चार बुज़ुर्गों को लेकर ज़मीनदार के घर पहुँचा । सारा वृत्तान्त सुनकर ज़मीन्दार बहुत प्रसन्न होकर बोला, "जहाँ ईश्वर का अवतरण हुआ वह स्थान ईश्वर का ही हो गया । वहाँ पर मन्दिर बनाने के लिये वह सारा मैदान मैं इनाम दे देता हूँ और यह मेरा प्रथम चन्दा भी लीजिये ।" यह कहकर ज़मीन के दस्तावेज़ के साथ मोटी सी रकम भी उसने उन लोगों को सौंप दी ।

विश्वनाथ ने उन बुज़ुर्गों के समक्ष उस स्थान पर कुआँ खोदने का प्रबन्ध किया जहाँ ख़ज़ाना छिपा हुआ था । फिर क्या ! ख़ज़ाना निकल आया । सब ने इसे ईश्वर की लीला माना ।

ख़ज़ाने से प्राप्त धन की मदद से दो-तीन महीनों के अन्दर ही एक सुन्दर शिवाले का निर्माण हुआ । दूर पर इमली के वृक्ष पर रहनेवाला वह भूत यह सारा कार्य देखता रहा ! वैद्यकी बुद्धिमत्ता से चकित हो वह कुछ भी कर नहीं पाया और चुप रह गया ।

पाँच प्रश्न
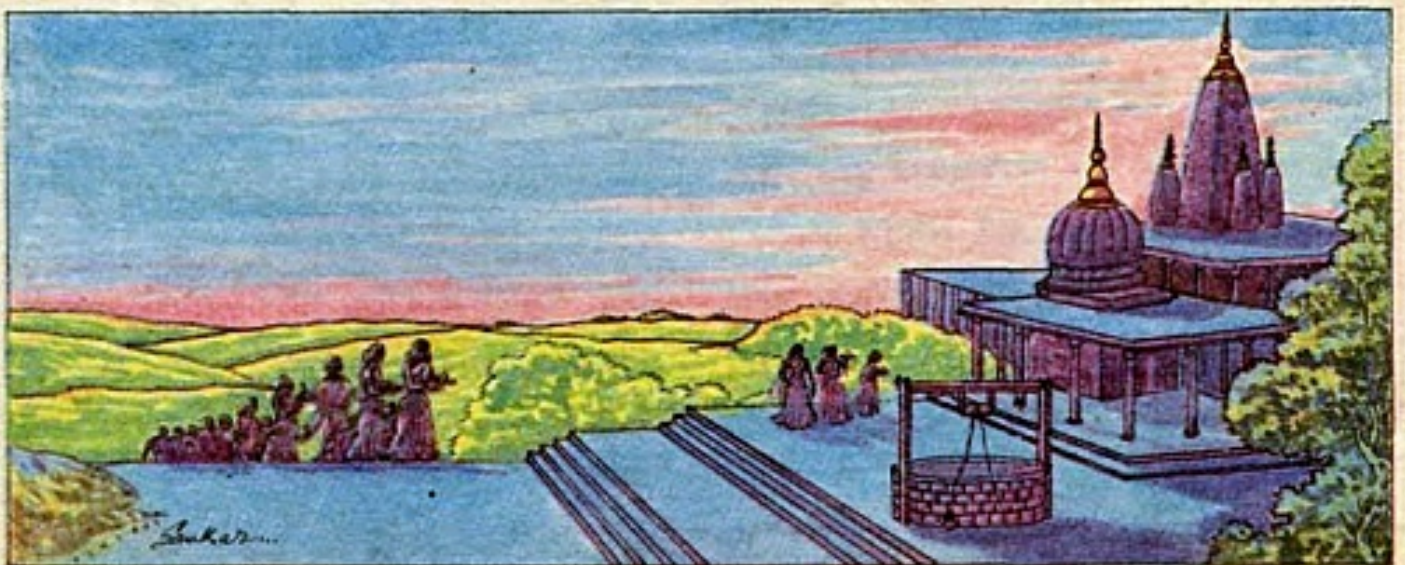
[२]

दूसरे दिन धीरसिंह जब सुलोचना से मिलने गया, तब सुलोचना ने उसे उचित आसन पर बिठाया और कहा, "पश्चिम दिशा में यहाँ से तीस योजन की दूरी पर एक नदी बह रही है । उस नदी का जल हमेशा रक्तिम वर्ण का होता है । यह नदी कहाँ से निकलती है और उसका रंग रक्तिम क्यों है ? यही मेरा दूसरा प्रश्न है । "

इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने के लिये धीरसिंह ने नौ दिन की अवधि माँगी और वह घोड़े पर सवार होकर वहाँ से निकल पड़ा । पश्चिम दिशा में चलते चलते वह एक जंगल में पहुँचा । उस जंगल के मध्य में उसे एक रक्त-नदी दिखाई दी । अब घोड़े से उतर कर वह नदी के किनारे-किनारे पैदल चलने लगा । बहुत देर तक वह चलता ही रहा । नदी के किनारे जो अद्‌भुत दृश्य उसको दिखाई दिये, उनसे उसका खूब मनोरंजन हुआ । अतएव वह चलते हुए थका नहीं । दोपहर को उसे कुछ आराम की ज़रूरत महसूस हुई । इसलिए एक विशाल बरगद की घनी छाँव में वह लेट गया । घंटे भर अच्छी नींद सोने के बाद वह तरो-ताज़ा हुआ, और फिर उसने नदी के किनारे चलना शुरू किया । सूर्यास्त तक वह एक पहाड़ी पर स्थित सरोवर के पास पहुँचा ।

उसने देखा कि सरोवर के पानी में रक्त का ही काफ़ी अंश है । सरोवर के मध्य एक

हँसने लगे और एक एक करके सभी सिर खिसक कर उस सरोवर में गिर पड़े ! सभी सिरों के उस तड़ाग में गिर जाने के बाद तड़ाग का रक्त अदृश्य हो गया और वहाँ एक अद्‌भुत भवन दर्शित हुआ । भवन के भीतर के एक विशाल मंडप में एक रत्नजडित सिंहासन था । थोड़ी देर बाद अनेक सखियों के साथ, तारों के बीच चन्द्रमा जैसी लगनेवाली एक अपूर्व सुन्दरी धीरे धीरे कदम बढ़ाती हुई आयी और सिंहासन पर बैठ गयी ।

तत्काल कुछ परिचारिकाएँ मिष्टान्न ले आयीं और उन्होंने सुवर्णथालों में उनको परोसा । उन नारियों ने दूर बैठे हुए धीरसिंह को भी दावत में निमन्त्रित किया । धीरसिंह जाकर उसे दिये आसन पर बैठ गया और खाना खाते हुए उसने पूछा, "तुम सब कौन हो ? यह अद्‌भुत क्या है ? मैंने जब से इस प्रदेश में कदम रखा है, मुझे बहुतेरी रहस्यभरी बातें दिखाई दे रहीं हैं । और मैं इन रहस्यों को जानता चाहता हूँ । क्या इस काम में आप मेरी सहायता कर सकती हैं ?"

यही प्रश्न धीरसिंह ने कई बार दुहराया, पर किसी ने भी उसके इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया । भोजन के बाद उन सभी युवतियों ने धीरसिंह को घेर लिया और प्रातःकाल तक अपने नृत्य और गीतों से उन्होंने उसका मनोरंजन किया । लेकिन प्रातःकाल होते ही वह भवन अदृश्य हो गया और साथ ही सभी नारियों के सिर् उस रक्तिम सरोवर के बीच के

विचित्र वृक्ष खड़ा है और उस वृक्ष की शाखाओं पर नारियों के असंख्य सिर लटक रहे हैं । उन सिरों से जब तब रक्त की धाराऐं निकल कर सरोवर के पानी में गिर रही हैं ! यह दृश्य देख कर उसे बड़ा ही आश्चर्य लगा । ये नारियों के सिर यहाँ कहाँ से आये ? उनका रहस्य क्या है ? इनसे खून क्यों टपक रहा है ? ऐसे तरह तरह के प्रश्न उसके मन में पैदा हुए । इन प्रश्नों के उत्तर पाने की उसे तीव्र इच्छा हुई ।

अत्यन्त विस्मयपूर्वक धीरसिंह उस दृश्य को देख रहा था और इसी बीच अन्धेरा फैल गया । परन्तु दूसरे ही क्षण वह सारा प्रदेश एक विचित्र प्रकाश से भर उठा । पेड़ पर लटके सिर धीरसिंह को देखकर खिलखिलाकर

वृक्ष की डालों पर लटकने लगे ।

उस अद्भुत दृश्य का पता लगाने के विचार से धीरसिंह ने चारों तरफ अपनी दृष्टि फैलाकर देखा, परंतु उसकी नज़र की कक्षा में उसे कोई भी प्राणी दिखाई नहीं दिया । वह फिर सीधे पश्चिम दिशा में चल पड़ा । इस प्रकार थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर उसे एक गुफा दिखाई दी । उसने गुफा के अन्दर झाँककर देखा - एक मुनि आँखें मूँदकर तप कर रहा था । धीरसिंह ने गुफा में प्रवेश कर भक्तिपूर्वक मुनि को साष्टांग प्रणिपात किया ।

मुनि ने आँखें खोलकर धीरसिंह का परिचय पूछा । धीरसिंह ने अपना परिचय देकर साथ ही अपने आगमन का हेतु कहते हुए कहा, "यदि मुनिवर की कृपा रही, तो मेरा कार्य बड़ी ही सरलतापूर्वक साध्य हो सकता है । "

"वत्स, तुम ने जिन नारियों को देखा, उन में से सब से सुन्दर है सुनन्दिनी । वह अग्निकुंभ नामक जादूगर की भानजी है । युक्त वयस्का होने के बाद सुनन्दिनी ने एक युवक के साथ विवाह करना चाहा । अग्निकुम्भ को वह रिश्ता पसन्द न आया और क्रोध में आकर उसने सुनन्दिनी को उसकी साखियों के साथ अपने मायाजाल में बन्दी बनाया । अग्निकुम्भ की मृत्यु के बाद ही सुनन्दिनी को रक्तिम सरोवर से मुक्ति मिल सकती है । " मुनि ने धीरसिंह को जानकारी दी ।

"मुनिवर, आप की कृपा हो तो मैं उस दुष्ट

का संहार करके सुनन्दिनी को मुक्त कर सकूँगा । " धीरसिंह ने आशा प्रकट की ।

"धीरसिंह, अग्निकुम्भ का संहार करने की शक्ति एवम् सामर्थ्य तुम ज़रूर रख सकते होगे । फिर भी वह अत्यन्त क्रूर व चालाक मान्त्रिक है । उसका इन्द्रजाल तुम पर कोई असर न डाले, इसलिये मैं तुम को एक मन्त्र का उपदेश देता हूँ । तुम मनसा, वाचा, कर्मणा तथा भक्तिपूर्वक उस मन्त्र का जाप करोगे, तो उस जादूगर को बड़ी आसानी से पराभूत कर सकोगे । " यह कहकर मुनि ने धीरसिंह को मन्त्र का उपदेश दिया ।

धीरसिंह ने कृतज्ञतापूर्वक मुनि को प्रणाम किया । मुनि ने धीरसिंह को आँखें बन्द करने को कहा और उसके मस्तक को दण्ड का
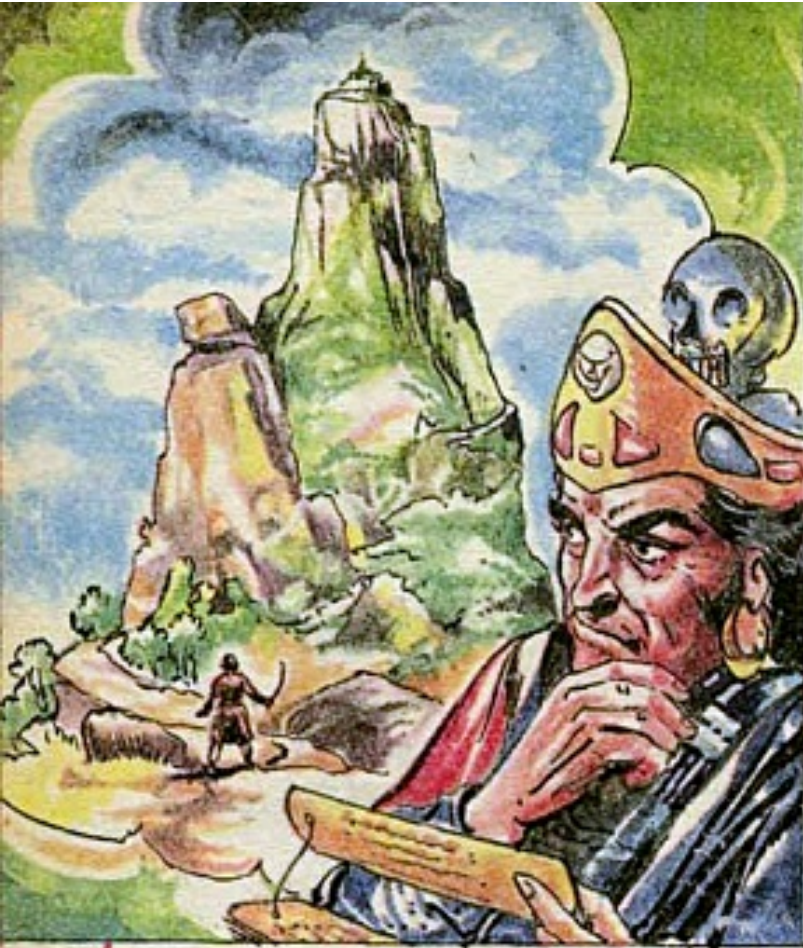
स्पर्श किया । थोड़ी देर में धीरसिंह ने आँखें खोल कर देखा, तो अपने आप को एक गगनचुंबी पर्वत की तलहटी में पाया । सारा पर्वत फूलों से ढँका हुआ था और बहुतसी चित्रविचित्र वनस्पतियों से शोभायमान था । उसने सोचा कि मुनि ने अग्निकुंभ के जिस दुर्ग के बार में कहा था, शायद वह इसी पर्वत पर होगा और वह पर्वत की ओर बढ़ा । जैसे ही उसने आगे कदम बढाया, दूसरे ही क्षण बाघ और सिंह गर्जन करते हुए उस पर कूद पड़े । मगर ज़रा भी विचलित हुए बिना धीरसिंह ने मुनि द्वारा उपदेश किये मन्त्र का तीन बार जाप किया । बस, इसके बाद एक भी जानवर वहाँ नहीं आया ।

थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर अचानक उस के पैर धरती से चिपक गये और छूटने का नाम ही नहीं ! उसने सोचा कि यह भी इन्द्रजाल ही होगा और फिर धीरसिंहने मन्त्र का जाप किया । अब उसके पैर छूट गये और वह साधारण रूप से चलने लगा ।

उस पर्वतपर दुर्ग में बैठे अग्निकुम्भ ने अपने ताडपत्रों को खोलकर देखा, तब उसे पता चला कि धीरसिंह अपनी ओर बढ़ रहा है । उसने सोचा कि धीरसिंह अगर दुर्ग में प्रवेश करेगा, तो उससे अपनी जान को ख़तरा पैदा होगा । इसलिये उसे रोकने का एक उपाय मान्त्रिक ने सोचा । अग्निकुंभ ने अपनी मायाविद्या के द्वारा एक माया-सुनन्दिनी और उसकी सखियों की सृष्टि की ।

माया-सुनन्दिनी मन्दहास करती हुअी अपनी सखियों के साथ धीरसिंह से मिलने गयी । उसको देखते ही विस्मय में आकर धीरसिंह ने पूछा, "रक्त-सरोवर में वृक्ष पर लटकनेवाली तुम सब इतनी जल्दी यहाँ कैसे आ सकीं ?"

"यह सब तो मेरे मामा की कृपा है । उन्होंने बड़ी कृपा करके हम सब को अपने मायाजाल से मुक्त किया है । चलो, हमारे साथ दावत खा लो । " माया-सुनन्दिनी ने मुस्कुराकर धीरसिंह को आमन्त्रण दिया ।

धीरसिंह उसकी बातों में विश्वास करके उसके पीछे पीछे चल पड़ा । मीठी बातें करते हुए माया सुनन्दिनीने नशीले पदार्थों से पूर्ण पेय धीरसिंह को दिया, जिसको पीते ही

वह बेहोश होकर गिर पड़ा । उसी क्षण माया सुनन्दिनी ने धीरसिंह को बन्दी बनाया और उसको ले जाकर अग्निकुम्भ के हाथ सौंप दिया ।

अग्निकुम्भ ने गरजकर अपने भटों को आदेश दिया, "इस दुष्ट के हाथ-पैर बाँधकर इसे ज्वाला कूप में डाल दो ।"

इस बीच धीरसिंह होश में आया और उसने इस धोखाधड़ी को पहचान लिया । उसने तत्काल मुनिवर का स्मरण करके मन्त्र का जाप किया । इससे वह अग्नि से धधकते कूप में गिरने के बावजूद भी सुरक्षित रहा । वह उस कूप से जीवित रूप में उठकर इस प्रकार ऊपर चला आया, मानों फूलों की सेज से उठकर आया हो ।

इस के बाद अग्निकुम्भ ने धीरसिंह को कारागार में बन्दी बनाने के लिये अपने अनुचरों को आदेश दिया । कारागार में बन्द अवस्था में धीरसिंह ने उसी रात के पहरेदार करुणाकर से मेल बढ़ाया । वार्तालाप के संदर्भ में उसने जान लिया कि वह पहरेदार भी अग्नि का शत्रु है और लाचारी की हालत में वह सेवक का काम कर रहा है । उसे यह भी मालूम हुआ कि सुनन्दिनी वास्तव में करुणाकर के साथ ही विवाह करना चाहती थी । धीर-सिंह ने उसे कहा, "तुम अगर मुझे कारागार से मुक्त करो, तो मैं अग्निकुम्भ का संहार करके तुम्हारा विवाह सुनन्दिनी के साथ करा दूँगा ।"

"यह काम उतना सीधा नहीं है, जितना तुम समझते हो । अग्निकुम्भ अत्यन्त क्रूर

एवम् महा मान्त्रिक है । इस पर्वत पर स्थित यह सुरक्षित दुर्ग ही केवल उसका निवास स्थान नहीं है; उसने अपनी माया के बल से पहाड़ के ऊपर हवा में तीस हज़ार फुट की ऊँचाई पर एक पेघमंडल निर्माण किया है । जब भी उसे किसी ख़तरे का आभास होता है, वह उस मेघमंडल में चला जाता है । ऐसी हालत में कोई भी मानव उसके पास पहुँच नहीं सकता । '' करुणाकर ने कहा ।

किसी की दुष्टता बहुत दिन तक नहीं चल सकती । जो लोग धर्म के लिये लड़ते हैं, वे कभी पराजित नहीं होते । तुम कारागार का द्वार खोलकर पहले मुझे मुक्त करो और अग्निकुम्भ के दुर्ग का रास्ता दिखाओ; बाकी सारा काम मैं खुद देख लूँगा । '' धीरसिंह ने कहा ।

धीरसिंह की बातों से करुणाकर बहुत खुश हुआ । वह कारागार का दरवाज़ा खोलकर धीरसिंह को साथ लेकर दुर्ग की ओर चल पड़ा । रास्ते में उन्होंने कई वृक्ष देखे । वृक्षों को दिखाकर करुणाकर ने कहा, "वास्तव में ये सारे वृक्ष नहीं है । जो जो लोग अग्निकुंभ का सामना करने गये, उनको उसने अपनी मंत्रशक्ति से वृक्षों के रूप दिये हैं । ये सारे वृक्ष वास्तव में मानव ही हैं । ''

इस के बाद धीरसिंह ने मुनि का स्मरण किया और फिर मन में संकल्प किया कि अग्निकुम्भ की माया से मुक्त होकर ये सारे वृक्ष परिवर्तित होकर फिर अपने वास्तव रूप धारण करें - और उसने मन्त्र का जाप किया । तत्काल वहाँ के सारे वृक्ष मनुष्यों के रूप में बदल गये । वे सभी आदमी उत्साह में आकर सैनिकों की भाँति धीरसिंह के पीछे चल पड़े ।

अपने दुर्ग में बैठकर ताडपत्रों का अवलोकन करनेवाले अग्निकुम्भ ने भाँप लिया कि धीरसिंह सेना का संगठन करके उसपर आक्रमण करने चला आ रहा है । उसने अपनी मन्त्रशक्ति से सारे प्रदेश को अंधकारमय बनाया । साथ ही सारा पर्वत काँपने लगा । इस हठात् परिवर्तन के कारण धीरसिंह के सैनिक भयभीत हो हाहाकार मचाने लगे । धीरसिंह ने फिर मन्त्र जपा और पर्वत का कंपन बन्द होकर धीरेधीरे अंधकार भी

जाता रहा ।

इस के उपरान्त अग्निकुम्भ ने मायाशक्ति से सैनिकों के बीच सर्प छोड़ दिये और ज्वालाऐं पैदा की, लेकिन धीरसिंह ने भी अपने मन्त्र से यह सब दूर किया । अन्त में विवश होकर अग्निकुम्भ दुर्ग से अदृश्य होकर मेघमंडल में भाग गया ।

इधर धीरसिंह के सैनिकों ने दुर्ग में प्रवेश किया । दुर्ग में उन्हें यत्र तत्र सोने के महल और सुंदर उद्यान दिखाई दिये । वैसे सारा दुर्ग निर्जन था, मगर बहुतसी जगहों पर खाने की चीज़ें भरी थीं । धीरसिंह के अनुचर भूखे थे । इसलिये वे उन पदार्थों पर टूट पड़े और थोड़ी ही देर में बेहोश होकर गिर पड़े । धीरसिंह समीप के सरोवर से पानी ले आया । उस में मन्त्र फूँक कर वह पानी उसने बेहोश सैनिकों के शरीरों पर छिड़क दिया । दूसरे ही क्षण वे सब उठ बैठे, जैसे गहरी नीन्द से जाग गये हों ।

इसके बाद करुणाकर को साथ लेकर धीरसिंह दुर्ग के बाहर आया । एक चट्टान पर बैठकर आकाश की ओर ताकते हुए यह संकल्प करके वह मन्त्र जपने लगा कि, अग्निकुम्भ का मेघमंडल ढह जाये ! मंत्र जाप खतम होतेही मेघमंडल भयंकर ध्वनि के साथ टूटकर हज़ारों टुकड़ों में ज़मीन पर गिर पड़ा । मान्त्रिक अग्निकुम्भ भी उसके साथ ही नीचे गिरकर अपने प्राण खो बैठा ।

यह देख सब ने हर्षनाद किया । अब धीरसिंह ने कुछ सैनिकों को दुर्ग के पहरेदार
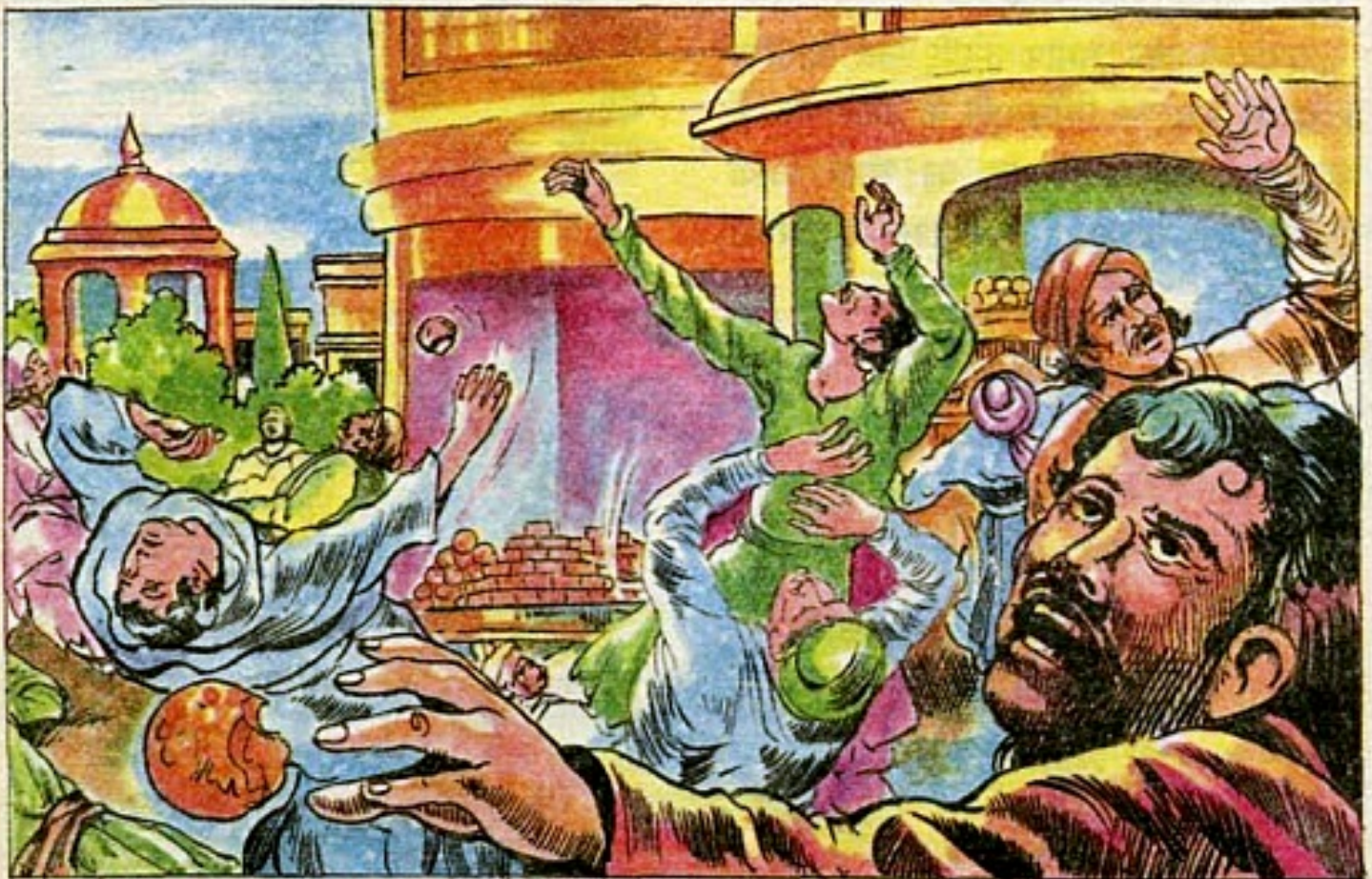
नियुक्त किया और करुणाकर को साथ लेकर वह रक्त-सरोवर की ओर चल पड़ा । पर उन्हें खुद सुनन्दिनी अपनी सखियों के साथ दुर्ग की ओर आती हुई दिखाई दी । मान्त्रिक अग्निकुम्भ की मृत्यु के साथ ही उसकी मायाशक्ति भी समाप्त हो चुकी थी ।

धीरसिंह को उसका करुणाकर को दिया वचन याद आया । उसको मालूम हो गया था कि सुनन्दिनी करुणाकर से प्यार करती है । और उसे अग्निकुंभ द्वारा जो सज़ा मिली थी, उसका कारण यही था । वास्तव में करुणाकर एक सुयोग्य युवक था और सुनन्दिनी के लिए उचित वर था । पर यह रिश्ता मामा अग्निकुंभ को स्वीकृत नहीं था, इसी कारण सुनन्दिनी उसके मायाजाल में फँसी थी । अब अपने वचन-पूर्ति के लिए अनुकूल समय आया है ऐसा धीरसिंह को लगा ।

सुनन्दिनी जब समीप आयी, तब धीरसिंह ने उस से कहा, – "मैंने मुनि के आशिर्वाद के फलस्वरूप दुष्ट अग्निकुम्भ का संहार किया है और इसी से तुम सब को रक्त-सरोवर से मुक्ति मिली है । अब तुम अपने वांछित वर करुणाकर के साथ विवाह कर सुखपूर्वक अपना जीवन बिताओ ।"

सुनन्दिनी धीरसिंह के कथन से बहुत ही प्रसन्न हुई । सुनन्दिनी और करुणाकर का विवाह धीरसिंह ने वैभवपूर्वक संपन्न कराया और उसके बाद वह सीधे मुनि के पास चला गया । मुनि को प्रणाम कर उन से बिदा लेकर वह कौशांबी नगर की ओर चल दिया ।

कौशांबी पहुँचने पर सुलोचना से भेंट करके उसने रक्त-सरोवर की पूरी कहानी उसे कह सुनायी । सारा वृतान्त सुनकर सुलोचना ने कहा, "तुमने जो कुछ कहा, वह सब सच है । मुझे समाचार मिला है कि उस दुष्ट मान्त्रिक की मृत्यु के साथ नदी का पानी निर्मल होकर वह पूर्ववत् बहने लगी है । यदि तुम कल आ जाओ तो मैं तुम से तीसरा सवाल पूछ लूँगी ।" इतना कहकर सुलोचना ने धीरसिंह को सादर बिदा किया ।

क्रमशः
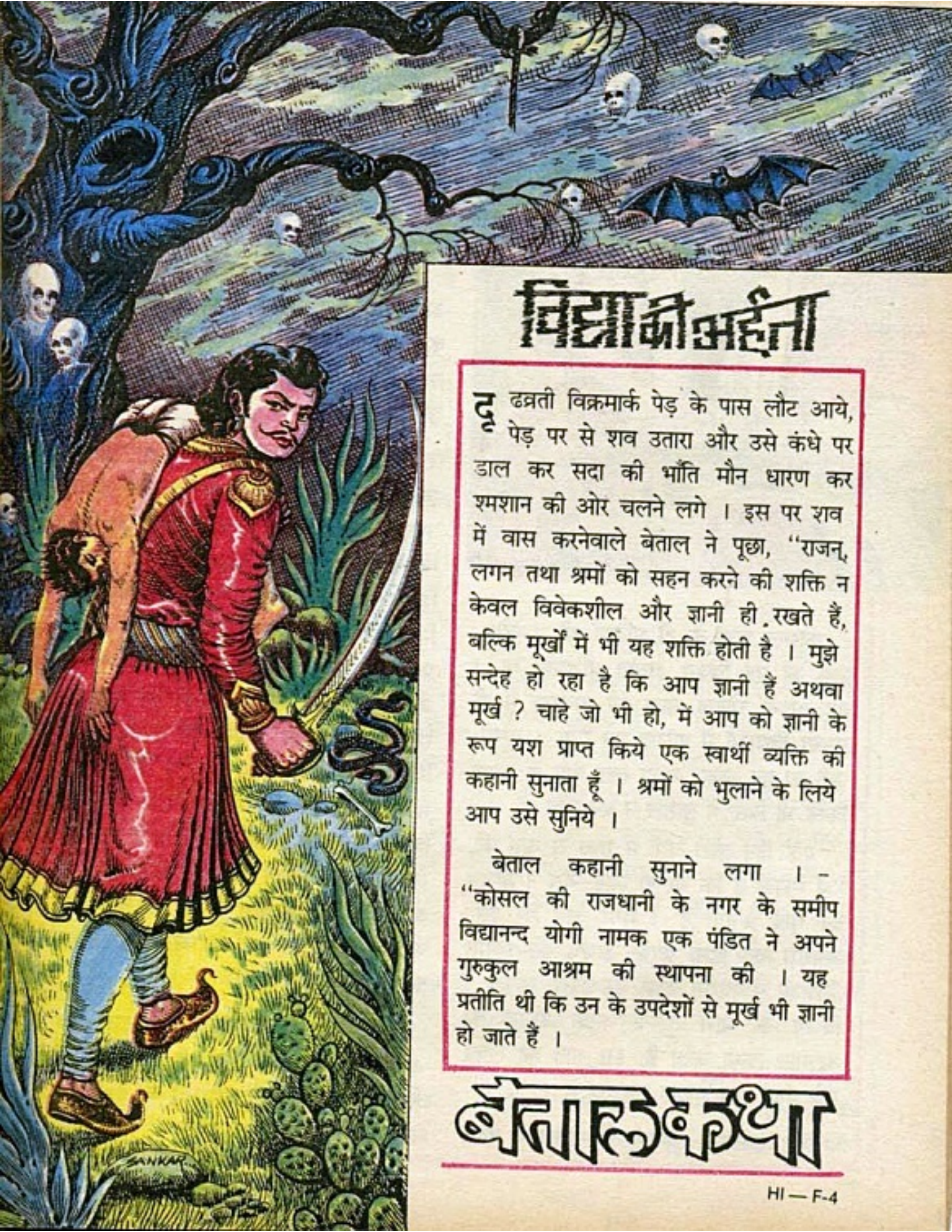
विद्या की अर्हता

दृढव्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये, पेड़ पर से शव उतारा और उसे कंधे पर डाल कर सदा की भाँति मौन धारण कर श्मशान की ओर चलने लगे । इस पर शव में वास करनेवाले बेताल ने पूछा, "राजन्, लगन तथा श्रमों को सहन करने की शक्ति न केवल विवेकशील और ज्ञानी ही रखते हैं, बल्कि मूर्खों में भी यह शक्ति होती है । मुझे सन्देह हो रहा है कि आप ज्ञानी हैं अथवा मूर्ख ? चाहे जो भी हो, में आप को ज्ञानी के रूप यश प्राप्त किये एक स्वार्थी व्यक्ति की कहानी सुनाता हूँ । श्रमों को भुलाने के लिये आप उसे सुनिये ।

बेताल कहानी सुनाने लगा । - "कोसल की राजधानी के नगर के समीप विद्यानन्द योगी नामक एक पंडित ने अपने गुरुकुल आश्रम की स्थापना की । यह प्रतीति थी कि उन के उपदेशों से मूर्ख भी ज्ञानी हो जाते हैं ।

बेताल कथा

कोसल राजा के दो पत्नियाँ थीं । ज्येष्ठ पत्नी का पुत्र विजय अत्यंत बुद्धिमान था । वह अपनी सोलह साल की अवस्था में ही समस्त विद्याओं में पारंगत बन गया । दूसरी पत्नी का पुत्र अजय ज्यादा लाड़-प्यार के कारण किसी भी विद्या में कुशल न बन पाया ।

एक दिन छोटी पत्नी ने राजा से बात की, "मैं मानती हूँ कि मेरे ही लाड़-प्यार ने अजय को मूर्ख बनाया है । मगर अब मेरे इस अपराध को क्षमा करके अजय को समस्त विद्याओं में पारंगत बनाने का प्रयत्न कीजिये । विजय के साथ तुलना करके अजय का अपमान किया जाता है; इस बात को लेकर मुझे बहुत दुख झेलना पड़ रहा है । "

यह हकीक़त सुनकर कोसलराज ने कहा, "हर किसी को अपनी करनी का फल तो भोगना ही पड़ता है । अजय अव्वल दर्ज़े का बुद्धू है, उसे तो काला अक्षर भैंस बराबर है । मैं उसे कैसे सुधार सकता हूँ ?"

"ऐसा न कहिये; अजय वैसे बड़ा ही अक्लमन्द है । उसको शिक्षा की ओर प्रवृत्त करके योग्य आचार्य के हाथ सौंपा गया, तो वह विजय को भी मात कर सकेगा । " छोटी रानी ने कहा ।

राजा ने थोडी देर सोचकर कहा, "हमारी राजधानी की सीमा पर विद्यानन्द योगी नामक आचार्य का गुरुकुल आश्रम है । सुना है, कि वे मूर्ख से मूर्ख विद्यार्थी को भी अच्छी शिक्षा दे सकते हैं । लेकिन आश्रम के नियम अत्यन्त कठोर होते हैं । वहाँ सभी प्रकार के सभी जाति के विद्यार्थी समान माने जाते हैं । राजा और रंक आदि का भेदभाव रखे बिना सब को समान रूप से आश्रम के नियमों का पालन करना पड़ता है । इसलिये मैं ने विजय को भी उस आश्रम में भर्ती नहीं किया । हमारी ही बात क्या ? हमारे नगर के समस्त संपन्न परिवार के लोगों में से कोई भी अपने बच्चों को गुरुकुल में भर्ती नहीं करवाते । क्या हमारा अजय वहाँ के कठिन नियमों का पालन कर सकता है ?"

छोटी रानी इसपर बोली, "महाराज, आप अजय के साथ विजय को भी उस आश्रम में भेज दीजिये । अपने बड़े भाई की देखादेखी अजय भी विजयी बन जाएगा । ऐसा करने

पर उसके मन में यह दुख न होगा कि उसकी अयोग्यता के कारण उसको गुरुकुल में भर्ती किया गया है । ''

राजा ने रानी की बात मान ली और अपने दोनों पुत्रों को विद्यानन्द योगी के गुरुकुल में भर्ती करवाया ।

थोड़े दिन बीत गये । राजा एक दिन अपने पुत्रों की शिक्षा की प्रगति के बारे में जानने के लिये अपनी दोनों रानियों को साथ लेकर गुरुकुल में पहुँचे । वहाँ अजय को अत्यंत उत्साही देख राजा और रानियाँ विस्मय में आ गयीं ।

राजा ने बड़े ही प्यार से अजय से पूछा, "बेटे गुरुकुल का जीवन तुम्हें कैसा लगता है ?"

"विद्यानन्द योगी महान् ज्ञानी हैं । उनके सान्निध्य में रहने से मेरे मन में शिक्षा के प्रति अभिरुचि पैदा हो गयी है । बाकी सब विद्यार्थी अनेक वर्ष लेकर जो शास्त्र सीखते हैं, उन्हें मैं ने प्रतिदिन एक शास्त्र के हिसाब से सीख लिया है । मैं ने दो हफ़्तों में ही सभी प्रमुख शास्त्रों का अध्ययन कर लिया है । '' अजय ने प्रसन्नतापूर्वक उत्तर दिया ।

छोटी रानी ने प्रसन्न होकर कहा, "बेटे तुम ने जो शास्त्र सीखे, उनका सार तो संक्षेप में बता दो ?"

"माँ, तुम उन शास्त्रों को समझ नहीं सकोगी । फुरसत के समय तुम्हें वे सब उपनिषद् की कहानियाँ सुनाऊँगा, जिन्हें मैंने आचार्य से सीख लिया है । हर कहानी के पीछे एक सीख है । यह कहकर अजय ने तत्काल कुछ कहानियाँ सुनायीं ।

वे सारी की सारी कहानियाँ मूर्खों से संबंधित थीं । वे सब अपने आप को महान् ज्ञाता मानने के कारण अन्त में अपमानित हुए ऐसे मूर्ख लोगों की वे कहानियाँ थीं ।

बड़ी रानी ने उद्विग्न होकर पूछा, "अजय, तुम्हारा बड़ा भाई दिखाई नहीं देता ? उसकी पढ़ाई कैसे चल रही है ?"

"मैं ने अभी अभी जो कहानियाँ सुनायीं, वे विद्यानन्द योगी ने मेरे साथ ही बड़े भैया को भी सुनायीं हैं । सुना है कि आचार्य नये नये

आये हुए सभी विद्यार्थियों को उन्हें सुनाते हैं, यह उनकी परिपाटी है । मगर ये कहानियाँ सुनकर बड़े भैया एकदम निराश हो गये । वे सोचने लगे कि वास्तव में वे कुछ हैं, इसलिये वे हमेशा गधों जैसे अध्ययन में लगे रहते हैं ।

अजय का यह उत्तर सुनकर राजा विस्मय में आ गये और उन्होंने विजय को बुला भेजा । विजय के आने में ज़रा देर लगी । उसको उदास देखकर राजा ने पूछा, "बेटा, तुम तो चिन्तित दिखाई दे रहे हो ! बात क्या है ? हमारे यहाँ आने का समाचार सुनकर भी तुम हमें देखने तुरन्त क्यों नहीं आये ?"

अपनी माताओं और पिता को प्रणाम करके विजय बोला, "पिताजी, अंतःपुर में रहकर अपने गुरुओं से मैंने जो कुछ सीखा, उसी को समस्त विद्याएँ - समस्त ज्ञान समझकर मैं अहंकार में आ गया था । मैं ने अपना महत्त्वपूर्ण समय अब तक व्यर्थ गँवाया है । समझ में आया है कि मुझे राज्य का भार भी वहन करना है; इसलिये मैं यथासंभव समय का एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खो रहा हूँ । "

इस बीच विद्यानन्द योगी वहाँ पहुँचकर बोले, "महाराज, आप के आगमन का समाचार मुझे ज़रा विलंब से प्राप्त हुआ । मैं पूजा-पाठ में लगा हुआ था । इसलिये देरी के लिये क्षमा चाहता हूँ । मेरे शिष्यों ने आप के आतिथ्य में कोई त्रुटि तो नहीं रखी है न ?"

आचार्य को अभिवादन करने के बाद राजा ने अपने पुत्रों का वृत्तान्त सुनाकर कहा, 'मैं ने

जो सोचा था उससे यहाँ की स्थिति भिन्न है । इनकी शिक्षा के बारे में आप का विचार क्या है ?"

"प्रभु, विजय यदि दो वर्षों तक ही यहाँ विद्याभ्यास करे तो मैं उसको समस्त शास्त्रों में दक्ष होने का अपना प्रमाणपत्र दूँगा । मेरा वह प्रमाणपत्र प्राप्त करनेवाला विद्यार्थी भक्ति, वेदान्त और व्यावहारिक ज्ञान में दक्ष माना जायेगा । "

"तो फिर अजय की बात क्या है ?" राजा ने पूछा ।

"अजय असाधारण प्रज्ञा रखता है वह एकसंथाग्राही है । विद्याभ्यास के लिये उसे किसी गुरु की आवश्यकता नहीं है । उसे शिक्षा देने के लिये मेरी बुद्धिमत्ता पर्याप्त नहीं है । आप आज ही उसको अपने साथ घर ले जा सकते हैं । " विद्यानन्द योगी ने जवाब में कहा ।

राजा ने विद्यानन्द योगी को और कुछ पूछना चाहा । मगर वे मौन हुए और अपने साथ अजय को लेकर अपनी राजधानी लौट आये ।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर विक्रमार्क से पूछा, "राजन्, सब लोगों के द्वारा प्रशंसा प्राप्त विद्यानन्द योगी स्वार्थी मालूम होते हैं न ? लगता है कि अजय को महान् ज्ञानी और एकसंथाग्राही बताने के पीछे कोई रहस्य छिपा है । मेरा संदेह है कि थोड़े और समय तक अगर अजय विद्यानन्द योगी के यहाँ अध्ययन करता रहता तो विद्या में वह भावी राजा विजय

से कहीं आगे बढ़ जाता । आचार्य के मन में भविष्य में राजगुरु के रूप में अधिक यश प्राप्त करने की स्वार्थ बुद्धि प्रबल हुई और इसी कारण उन्होंने अजय को अधिक शिक्षा देना अस्वीकार किया न ? अन्यथा एकसंथाग्राही अजय को घर भेजने का और क्या अर्थ हो सकता है ? अजय भी गुरुकुल में और अधिक समय पढ़ता तो वह अधिक सुयोग्य ही बन जाता न ? विद्यानन्द ने अजय जैसे एकपाठी शिष्य को राजा के साथ क्यों घर भेज दिया मेरी तो समझ में नहीं आता । इसके पीछे ज़रूर कुछ रहस्य है । इस सन्देह का समाधान जानकर भी न दो तो तुम्हारा सिर फूटकर टुकड़े टुकड़े हो जाएगा । ''

इसपर विक्रमार्क ने उत्तर दिया - ''एक राजकुमार को उसके माँ बाप के सामने मूर्ख बताना अनुचित है, इसलिये विद्यानन्द ने बड़ी सूक्ष्मता के साथ राजा की समझ में आने लायक रीति से यह बात समझा दी । हो सकता है कि अजय एकसथाग्राही भी हो, मगर जन्म से ही वह मूर्ख है । उसकी मूर्खता दूर करने के लिये ही योगी ने उसे मूर्खों की कहानियाँ सुनायीं । मगर उन कहानियों को सुनने के बाद भी अजय के मन में यह विचार नहीं आया कि वह खुद भी उन कहानियों के मूर्खों में से एक है । अजय अगर दो सप्ताहों के अन्दर अपने को सभी विद्याओं में पारंगत होने का विश्वास रखता है, तो वास्तव में यदि वह शास्त्रज्ञान में दक्ष हो जाता है, तो अहंकार में आकर वह सब को सता सकता है । चूँ कि वह राजा का पुत्र है, इसलिये उसका अहंकार पूरी प्रजा के लिये परेशानी का कारण बन सकता है । इसलिये तो वह विद्या पाने की अर्हता नहीं रखता । विद्यानन्द योगी ने अत्यन्त निःस्वार्थ भाव से राज्य के हित की कामना से ही अजय को शिक्षा देना अस्वीकार किया है । ''

इस प्रकार राजा का मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य होकर पुनः पेड़ पर जा बैठा ।

कल्पित

किसी गाँव में धर्मदास नाम का एक धनवान आदमी रहता था । अपनी मृत्यु निकट आयी है यह जानकर उसने अपने पुत्र शिवराम और नारायण को बुलाकर समझाया, "बेटों, तुम दोनों मेरी मृत्यु के बाद इस संपत्ति को एक-एक तिनके सहित बराबर बाँट लेना । "

अपने पिता की मृत्यु के बाद उन दोनों बेटों ने धर्मदास की संपत्ति के दो भाग किये । सारी जायदाद-सिवा गायों के-बराबर बँट गयी । लेकिन गायें तो तेरह थीं; इसलिये उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि गायों को दो बराबर हिस्सों में कैसे बाँटा जाये ।

उनकी इस समस्या को जानकर गंगाधर शास्त्री नामक एक गरीब ब्राह्मण उनके घर पहुँचकर कहने लगा, "देखो बेटों, मैंने सोचा कि तुम लोग अपने पिता के श्राद्ध के समय गोदान तो करोगे ही । तुम लोग एक गाय मुझे दान दे दो, तो तुम्हारे पिता की आत्मा को शान्ति मिलेगी, मेरा परिवार सुखी होगा और तुम्हारी बँटवारे की समस्या भी हल हो जायेगी । "

शिवराम और नारायण ने ब्राह्मण की बात को अस्वीकार किया ।

गंगाधरशास्त्री ने कहा, "यदि मुझे उचित पारिश्रमिक दिया जाये, तो मैं तुम्हारी गायों के बँटवारे की समस्या हल कर सकता हूँ । "

"बताओ, तुम इस काम के लिये क्या चाहते हो ?" दोनों ने पूछा ।

"एक गाय । " गंगाधरशास्त्री ने कहा ।

"तुम्हें एक गाय दे दें, तो हिसाब अपने आप ठीक हो ही जायेगा । इसमें तुम्हारी क्या बुद्धिमत्ता ?" दोनों भाइयों ने कहा ।

"मैं तुम से गाय लिये बिना बँटवारा कर दूँगा । ठीक है ?" गंगाधरशास्त्री ने इत्मीनान

अरुंधती शाह

से कहा ।

अब शिवराम और नारायण का कुतूहल बढ़ गया । दोनों भाई देर तक सोचते रहे, लेकिन उनकी समझ में नहीं आया कि गंगाधरशास्त्री यह समस्या कैसे हल करने-वाले हैं । वे बोले, "ठीक है, पहले बँटवारा कर दीजिये । गायें हम दोनों को बराबर मिल जानी चाहिये । तुम्हें पारिश्रमिक देने के बाद भी हमारी गायों की संख्या एक ही होनी चाहिये । "

"अच्छी बात है, अब मेरी गाय को भी तुम्हारी गायों में मिलवा दो । कुल चौदह गायें हुई न ? अब तुम दोनों को सात-सात गायें मिलनी चाहिये । बँटवारा ठीक हुआ न ?" गंगाधरशास्त्री ने समझाया ।

"सुनो, मगर अब एक गाय तुम को दे दी जाये तो हमारा बँटवारा समान कैसे होगा ?" दोनों भाई एक साथ ही चिल्ला उठे ।

"हैं? मुझे एक गाय देने के बाद तुम्हारे पास अपनी बारह गायें ही बच जायेंगी ? बँटवारे में दिक्कत क्या हो सकती है ?" गंगाधरशास्त्री ने पूछा ।

"तो फिर तुम ने जो गाय दी, उसका क्या होगा ?" भाइयों ने अपना सन्देह प्रकट किया ।

"मैं ने तुम्हें अपनी गाय दी कब थी ? बँटवारे की सुविधा के लिये मैं ने अपनी गाय तुम्हारी गायों में मिला दी थी । बस, यही तो बात है । अब बँटवारा समान हो गया है, मैं अपनी गाय वापस ले लेता हूँ । " गंगाधर शास्त्री बोला ।

यह फैसला सुन दोनों भाई खिलखिलाकर हँस पड़े । फिर गंगाधरशास्त्री को एक गाय देकर बोले, "हम इसे तुम्हें बँटवारे के पारिश्रमिक के रूप में नहीं दे रहे हैं । तुम्हारी चातुरी और अक़लमन्दी के लिये दे रहे हैं । "

गंगाधर शास्त्री दोनों गायों को लेकर खुशी खुशी घर लौट गया ।

चन्दामामा पुरवणी -४

ज्ञान का ख़ज़ाना

इस मास का ऐतिहासिक व्यक्ति

श्री चैतन्य महाप्रभु

श्री चैतन्य महाप्रभु - जिन को गौरांग नाम से भी जाना जाता था - का जन्म फरवरी, १४८६ में बंगाल के नवद्वीप गाँव में हुआ था । वे बड़े बुद्धिमान पंडित बने, मगर चौबीस साल की उमर ही उन्होंने अपना घर छोड़ दिया और वे संन्यासी बने । भगवान कृष्ण के प्रति हज़ारों लोगों के मन में प्यार और भक्ति भाव जगाते हुए उन्होंने वृन्दावन और अन्य स्थानों की यात्रा की, मगर उन्होंने अपना ज़्यादा से ज़्यादा समय भगवान जगन्नाथ की पवित्र भूमि जगन्नाथपुरी में ही व्यतीत किया । धर्म और जाति के भेदाभेद में वे विश्वास नहीं रखते थे । उन के पास आनेवाला हर व्यक्ति उन से प्रभावित होता था । कठोर व्यक्ति मृदु बनते और नास्तिक व्यक्ति भक्त बन जाते थे । ओरिसा का राजा प्रताप रुद्र देव इस संत महात्मा को बहुत चाहता था ।

वैष्णवधर्म को बढ़ावा देते हुए या विष्णु भगवान को समझने की प्रेरणा देते हुए अपनी उमर के ४८ वें साल में चैतन्य महाप्रभु अचानक अदृश्य हो गये ।

वह कौन

कुछ बच्चे नदी में नहा रहे थे, और कुछ तैर रहे थे । वह गरमी का एक सुहाना दिन था । पानी ठंड़ा था और प्रवाह बहुत शांत और आल्हादक था ।

अचानक पानी ज़ोर से उछला । और बच्चों ने एक मगर की पूँछ देखी और दूसरे ही क्षण उनमें से एक को "अरे, मगर ने मेरा पैर पकड़ लिया है ! " चिल्लाते हुए सुना ।

नदी किनारे खड़े दो बच्चे उस लड़के की माँ को यह बात बताने के लिये दौड़ पड़े । घबड़ायी हुई माँ भागी भागी उस स्थान पर पहुँच गयी ।

"माँ, मुझे मृत्यु से बचाने का एक ही उपाय है - मुझे भगवान को अर्पण करना ! करोगी माँ ? " लड़के ने पूछा ।

"हाँ हाँ, ज़रूर मैं तुझे भगवान को अर्पण करूँगी, मेरे लाल ! भगवान तेरी रक्षा करे !" माँ ने चिल्लाकर कहा ।

और बच्चे को छोड़ मगर वहाँ से दूर चली गयी !

कौन था यह लड़का ?

(पृष्ठ ८ देखिए ।)

सूचनाएँ :

पक्के ढक्कनवाला एक बड़ा सा डब्बा लीजिये । उसके ढक्कन के मध्य में और तल के मध्य में दो-दो छेद बनाइये । अब रबर का एक ही काफी लंबा, मज़बूत, धागे जैसा टुकड़ा काटिये । उसको डब्बे के तल के छेदों में से और ढक्कन के भी छेदों में से पिरोइये ।

दोनों छोर ढक्कन के बाहर एक-दूसरे से बाँधने से पहले डब्बे के अन्दर का एक धागा धातु के एक वज़नदार नट में से या मछली पकड़ने के हुक में से गुज़ार लीजिये, जिससे कि यह वज़न उस धागे से झूलता रहे । (चित्र में देखिये) ध्यान रखिये कि वज़न इतना न झूले कि डब्बा गड़गड़ाने से वह वज़न डब्बे के साथ घसीटता जाये । अब डब्बे का ढक्कन मज़बूती से बन्द करके डब्बे को ज़मीन पर धीरे से गड़गड़ाते छोड़िये ।
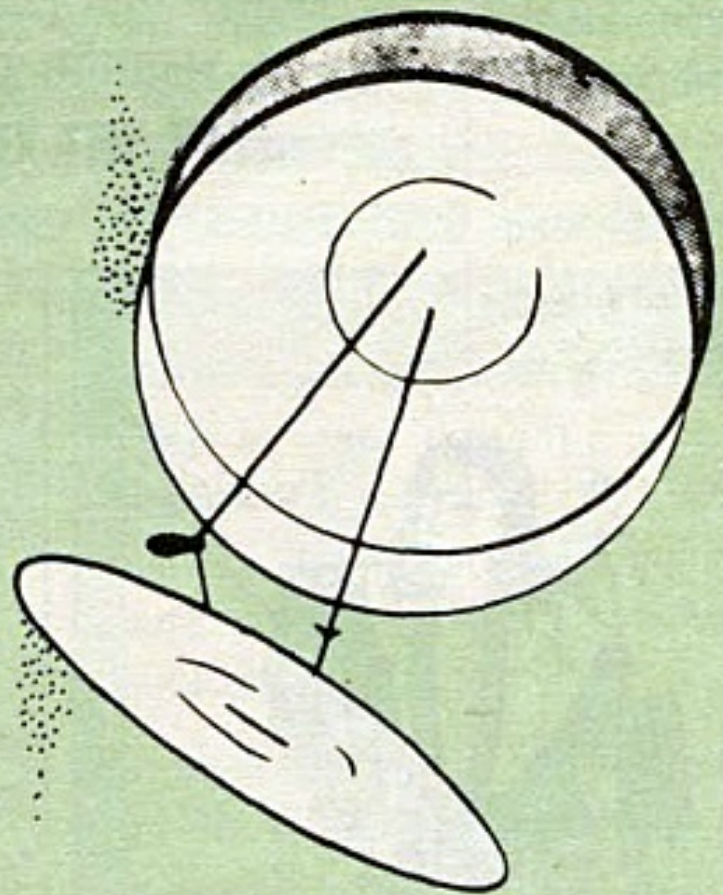
जादू-ई-डब्बा

क्या होता है और क्यों :

डब्बा थोड़ी दूर गड़गड़ाता जाता है, थम जाता है और फिर वापस गड़गड़ाता आता है । यह इसलिये होता है कि एक धागे से झूलता हुआ वज़न दूसरे धागे से लपेटता जाता है और डब्बा थम जाने पर वज़न नीचे खींचा जाकर धागों पर पड़ा बल छूटता जाता है और इससे डब्बा पीछे गड़गड़ाता आता है ।

असल में क्या हो रहा है यह बात न समझनेवाले को यह 'जादू-ई-डब्बा' काफी आश्चर्यजनक लगेगा । क्यों न अपने दोस्त को यह करके दिखाए ?

अपने हाथों ही हाथों में डब्बे को इस तरह घुमाते रहिये और इससे अन्दर के धागों को इस प्रकार लपेटने को मजबूर कीजिए कि डब्बे को ज़मीन पर रखते ही वह आप से दूर खिसकता जाये – कर सकेंगे ?

'विम' का कम वजनवाला गोल कागज़ का डब्बा यह काम क्या ज़्यादा अच्छी तरह करेगा ? करना तो चाहिये; क्योंकि डब्बे को गड़गड़ाने में कम वज़न इस्तेमाल होगा ।

झीअस का पुतला

ईसापूर्व ५ वीं शताब्दि में ग्रीस ने सुवर्णयुग क अनुभव किया । उस समय राजनीतिज्ञ पॅराक्लिस सत्ताधीश था ।

सब से प्रसिद्ध शिल्पकार फिडियस इसी ज़माने का था । उसकी सब से पहली बड़ी कलाकारी थी ४० फूट ऊँचाईवाली अथेनिया देवी की मूर्ति, जो हाथीदाँत और सोने से बनायी गयी थी । यह मूर्ति अथेन्स शहर के मध्य में एक पहाड़ी पर स्थित प्रचण्ड देवालय पार्थेनान में स्थापित की गयी थी ।

फिडियस का दूसरा सबसे बड़ा कलाकारी का काम था हाथीदाँत और सुर्वण से बनायी झीयस की प्रतिमा, जो आलिम्पिया के मंदिर को सुशोभित करने के लिये बनी थी । यह प्रतिमा एक हट्टे कट्टे आदमी के आकार के सात गुना बड़ी थी । यह प्रतिमा बहुत ही आकर्षक थी और प्राचीन ज़माने में उस को दुनिया के सात आश्चर्यों में एक माना जाता था ।

भूतकाल की महान् घटनाएँ

कार्थेज का विनाश

ईसा पूर्व तीन सौ साल सीरिया के किनारे के प्रदेश में रहनेवाले फिनीशियन्स नाम के वंश के लोगों ने एक विशाल शहर का निर्माण किया । वह कार्थेज नाम से प्रसिद्ध हुआ । कार्थेज व्यापार और अुद्योग का बहुत बड़ा केन्द्र था ।

बहुत दूरी पर होते हुए भी उस के करीब करीब सामने ही दूसरे एक शहर – रोम का उदय हुआ । ये दोनों शहर एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी बने । थोड़े ही समय बाद उन में लड़ाइयाँ छिड़ीं जो इतिहास में 'प्युनिक युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध हुईं ।

पहले प्युनिक युद्ध में कार्थेज पराभूत हुआ । उस में से ज़रा ठीक होने पर उन्होंने एक निर्दय सेनापति के आधिपत्य में एक सेना भेजी । सेनापति का नाम था हनिबाल । उसने रोमन लोगों को पराभूत किया और उसके बाद उसने निर्दयता से वहाँ के नब्बे हज़ार स्त्री-पुरुषों को मौत के घाट उतारा । कुछ काल के लिये हनिबाल हुकुमशाह और मृत्यु का जीता प्रतीक बनकर वहीं रहा ।

मगर इधर मातृभूमि के लोग कार्थेजीनियन्स ने कुछ समय बाद उसको पैसा और अन्य जीवनावश्यक वस्तु भेजना बन्द किया । तब अपने देश में उसका एक अच्छे नेता के रूप में स्वागत होगा, इस आशा में वह रोम से लौट आया । मगर

कुछ भी कारण हो, उसकी यह आशा पूरी नहीं हुई और हताश होकर उसने आत्महत्या की ।

अब रोम ने अपना पुनर्वसन शुरू किया । थोड़े ही दिनों में सिपिओ नाम का एक सेनापति सेना लेकर कार्थेज रवाना हुआ और उसने कार्थेज को घेर लिया । बाकी दुनिया से इस शहर का संबंध पूर्णतया कट गया और वहाँ के नागरिकों को खाने के लाले पड़े । इस के बाद सिपिओ ने शहर में प्रवेश किया और वहाँ के सात लाख लोगों में से साढ़े छः लाख लोगों को कत्ल किया । बाकी के जीवित लोगों को गुलाम बनाकर वह रोम ले गया ।

बाद में रोमन लोगों ने कार्थेज शहर का पूर्णरूपेण विनाश किया । विनाश इस हद तक किया गया की कोई भी इमारत, किसी भी इमारत का एकाध खम्भा या एकाध दीवार भी नहीं बच सकी । शहर के अवशेषों पर बाद में उन्होंने अपने हल चलाये ।

इतिहास मे मनुष्यों से इतने बड़े पैमाने पर किया गया यह पहला ही विनाश था । एक हिंसा के दूसरी हिंसा को जन्म देने का यह एक उदाहरण था ।
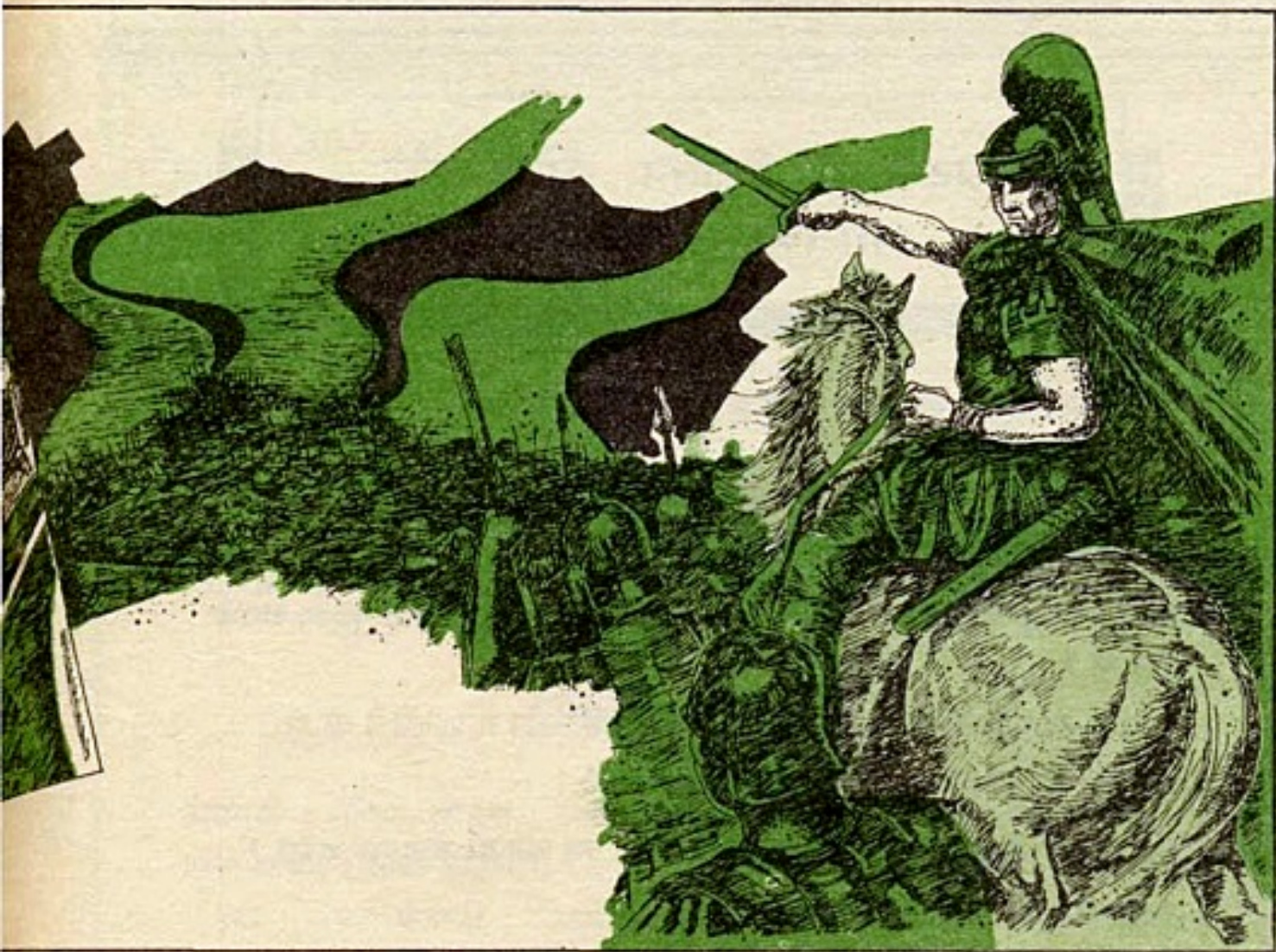
१. कर्नाटक शब्द का अर्थ क्या है ?

२. भारत के बाहर के कौन से देश ने अपनी राजधानी को 'अयोध्या' नाम दिया ?

३. किसी किले को घेरकर कौन-सा शहर आबाद हुआ ?
   (अ) उस किले का नाम क्या है ?
   (ब) उसको बाँधने का काम किसने शुरू किया ? कब ?
   (क) उसको ज़मीन किसने दी ?

४. कलकत्ते में अंग्रेज़ों के बनाये किले का नाम क्या है ? वह कब बाँधा गया ?

५. अपने ही सेनापति द्वारा कौन से मुग़ल सम्राट को क़ैद करवाया गया ?
   (अ) वह सेनापति कौन था ?
   (ब) सम्राट को किसने मुक्त किया ?

६. ईसवी सन के कौन से साल से विक्रम संवत् गिना जाता है ?

७. ईसवी सन के कौन से साल से शालिवाहन शक गिना जाता है ?

८. ईसवी सन के कौन से साल से गुप्त संवत् गिना जाता है ?

घटनाओं, विज्ञान, खोज और आविष्कारों की दुनिया

१. कौन युरोपीय आदमी चीन सम्राट के दरबार में उच्च अधिकारी बना ?
   (अ) यह सम्राट कौन था ?
   (ब) इस युरोपीय आदमी के साहसों का पता कैसे चला ?
   (क) इस आदमी के साथ और दो युरोपीय आदमी कौन थे ?

२. ब्रह्मपुत्रा, सिन्धु और सतलज नदियों के उगम स्थानों को खोज निकालनेवाला युरोपीय आदमी कौन था ?

३. मानव से हज़ारों साल पहले कागज़ जैसे पदार्थ की निर्मिति कौन से प्राणियों ने की थी ?

४. कौनसा प्राणी अपना पेट अन्दर से बाहर उलटा सकता है ?

५. एक गिलास भर पानी में बरफ का टुकड़ा पिघलाने से क्या पानी की सतह बढ़ जायेगी ?

६. हवाई जहाज़ की पहली प्रतिकृति किसने बनायी ?

७. चन्द्र का पहला फोटो कब उतारा गया ?
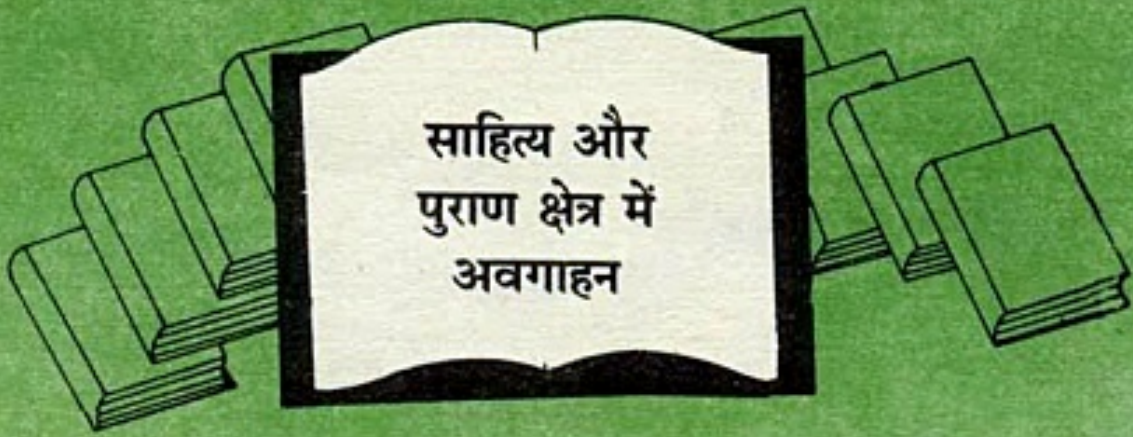
(पृष्ठ ८ देखिए)

१. विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्न कौन थे ?

२. नायमार कौन हैं ?

३. अलवार कौन हैं ?

४. भारत के पहले ग्रंथ कौन से हैं ?
   (अ) वे कितने हैं ?
   (ब) उनको किसने रचा ?
   (क) उनको किसने एकत्रित किया ?
   (ड) वेदों का दूसरा नाम क्या है ?
   (ई) उनको यह नाम क्यों प्राप्त हुआ ?

५. वेदों के बाद कौनसे ग्रन्थों का निर्माण हुआ ?
   (अ) वे कितने हैं ?
   (ब) उनमें से कितने विशेष महत्त्व के हैं ?

(पृष्ठ ८ देखिए ।)

सभी भारतीय भाषाओं का एक शब्द सीख लें

- शाम -

आसामी : संधिया; **बंगला** : संध्या; **अंग्रेजी** : इव्हिनिंग; **गुजरात** : सांज; **हिन्दी** : शाम; **कन्नड** : सँजे; **काश्मीरी** : शाम; **मलयालम** : बैकुन्नेरम्; **मराठी** : संध्याकाल; **उड़िया** : संध्या; **पंजाबी** : लोटाबेला; **संस्कृत** : संध्या; **सिन्धी** : शाम; **तमिल** : मालै; **तेलुगु** : सायंकालम्; **उर्दू** : शाम ।

आप को विश्वास है ?

* कि ज्यूलियर सीझर रोमन सम्राट था ?
* कि आकाश का रंग नीला है ?
* कि सिर्फ भारत में ही हिन्दू बहुसंख्य हैं ?

नहीं, नहीं !

* उसकी तीव्र इच्छा के बावजूद, वह कभी भी 'सम्राट' पद नहीं जीत सका ।
* आकाश किसी भी रंग का नहीं होता । पृथ्वी के वातावरण में से सूर्यप्रकाश के गुज़रने के कारण आकाश नीला लगता है ।
* नहीं, नेपाल में भी हिन्दू ही बहुसंख्य हैं ।

उत्तरावलि

वह कौन ?

आदि शंकराचार्य ।

इतिहास

१. कुरुवाडु शब्द से बने कर्नाटक शब्द का अर्थ है - भव्य धरती ।

२. थायलंड की राजधानी ।

३. आज का मद्रास शहर ।

(अ) सेंट जॉर्ज किला ।

(ब) ईस्ट इण्डिया कंपनी का फ्रान्सिस डे, १६४० में ।

(क) चन्द्रगिरी का राजा ।

४. १६९६ से १७१५ के काल में बाँधा गया फोर्ट विल्यम ।

५. बादशाह जहाँगीर ।

(अ) महाबत खान ।

(ब) सम्राज्ञी नूरजहाँ की कुशलता से ।

६. ईसापूर्व ५८ से ।

७. इसवी सन ७८ से ।

८. ईसवी सन ३१९-२० से ।

सामान्य ज्ञान

१. मार्कों पोलो ।

(अ) कुब्ला खान ।

(ब) इटली लौटने पर मार्को पोलो एक लड़ाई के सिलसिले में कैद हुआ । कैद-खाने में अपनी स्मृतियाँ उसने प्रकट कीं ।

(क) उसका पिता निकोला पोलो और चाचा मैफिओ पोलो ।

२. स्वेन ऑडर्स हेदिन (१८६५ - १९५२) ।

३. बर्रे ।

४. स्टार फिश ।

५. नहीं ।

६. लिओनार्दो द व्हिन्सी ।

७. ईसवी सन १८४१ में ।

साहित्य और पुराण

१. कालिदास, वेतालभट्ट, घटकर्पर, वराहमिहिर, क्षपणक, अमरसिंह, वररुचि, शंकु और धन्वन्तरी ।

२. पुराने तमिल प्रान्त के शैव-साधु ।

३. पुराने तमिल प्रान्त के वैष्णव-साधु ।

४. वेद ।

(अ) चार ।

(ब) पुराने ज़माने के अनेक ऋषियों ने ।

(क) वेद व्यास ।

(ड) श्रुति ।

(ई) क्योंकि उनको लिखा नहीं गया था, बल्कि पंडितों की पीढ़ियों ने उनको ज़बानी याद किया था । (श्रुति शब्द का अर्थ है जो भी 'सुना' गया)

५. उपनिषद् ।

(अ) एक सौ आठ ।

(ब) सोलह ।

नेहरूजी की कहानी
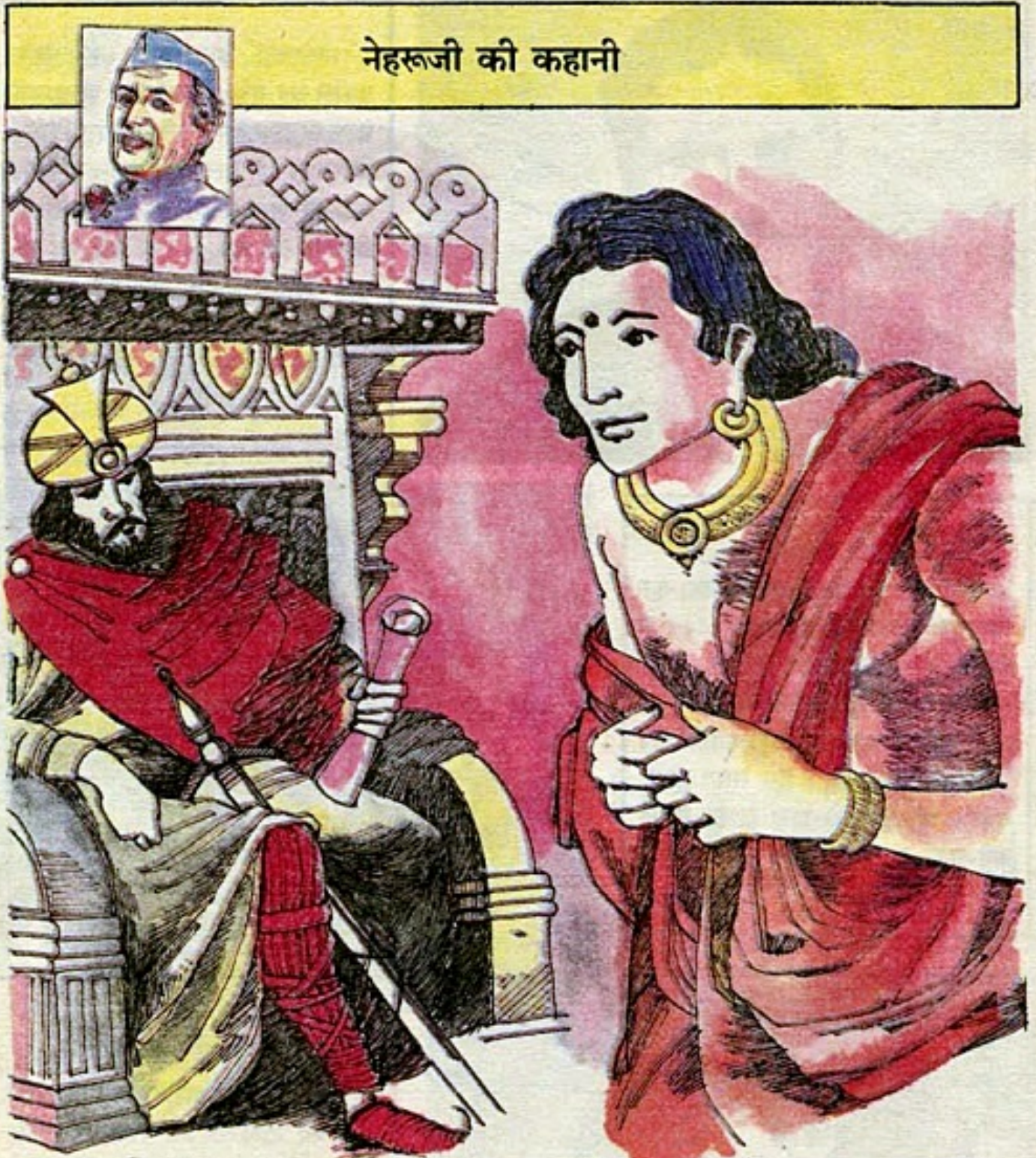
अठारहवीं सदी में मुगल बादशाह फ़रूक बशीर जब कश्मीर गये, तब राजकौर नामक एक ब्राह्मण पंडित से उनकी मुलाक़ात हुई और उनके असाधारण पांडित्य पर वे मुग्ध हो गये । इस प्रकार राजाश्रय पाकर उनका परिवार कश्मीर से दिल्ली आ बसा । दिल्ली में एक नहर के किनारे उस पंडित ने अपना घर बनाया; इस कारण लोग उनको 'नेहरू' कहने लगे । उस परिवार के गंगाधर नेहरू १८५७ के सिपाही-विद्रोह के समय पूर्व दिल्ली में कोतवाल के पद पर थे । सिपाही-विद्रोह में उस परिवार का सब कुछ स्वाहा हो गया और इसी कारण गंगाधर नेहरू आग्रा चले गये । १८६१ में उनकी मृत्यु हुई । उनकी मृत्यु के तीन महीने बाद उनके पुत्र मोतीलाल का जन्म हुआ । मोतीलाल के बड़े भाई नन्दलाल ने मोतीलाल को पाल-पोसकर बड़ा किया ।

मोतीलाल बड़ी लगन से पढ़कर वकील बन गये । उन्हीं दिनों इलाहाबाद में उच्च न्यायालय की स्थापना हुई । मोतीलाल ने इलाहाबाद जाकर अपनी वक़ालत शुरू की । वे अल्प समय में ही संपन्न बन गये । उनके बड़े भाई की मृत्यु के बाद उनका और बड़े भाई का परिवार - दोनों सम्मिलित रहे । इस सम्मिलित परिवार की पूरी ज़िम्मेदारी मोतीलाल ने निभायी ।

मोतीलाल की प्रथम-सन्तान तथा एक मात्र पुत्र जवाहरलाल का जन्म १८८९ में नवंबर १४ को हुआ । उनके पिता मोतीलाल दिनभर काम करके शाम का समय मित्रों के साथ विनोदपूर्वक वार्तालाप करते हुए बिताते थे । उस समय छोटा जवाहर पर्दे के पीछे खड़ा रहकर उनकी बातें सुनने का प्रयत्न करता था ।

एक दिन इस गपशप के दौरान अपने पिता को लाल रंग की शराब पीते देख जवाहर दौड़कर अपनी माँ के पास पहुँचा और चिल्लाने लगा, ''माँ, माँ ! पिताजी खून पी रहे हैं । '' लड़के का भोलापन और विस्मय देखकर उसकी माँ स्वरूपरानी मन ही मन हँस पड़ी ।

मोतीलाल साधारणतया सब से उदारता से व्यवहार करते थे । मगर क्रोध के समय बड़ी निर्दयता से पेश आते थे । एक दिन जवाहर ने अपने पिता की मेज़पर दो कलमें देखीं । उसने सोचा, पिताजी एक साथ दो-दो कलमों से तो नहीं लिखते । यह विचार कर उसने एक कलम अपने लिये उठा ली । जब बात खुल गयी, तो मोतीलाल ने क्रोध में आकर जवाहर को छड़ी से पीटा !
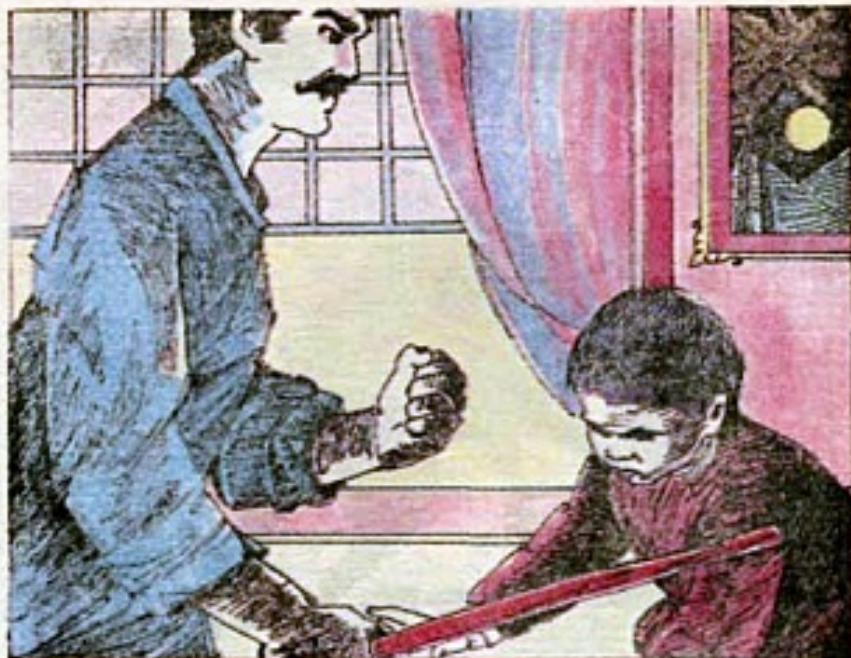
मार खाने पर भी जवाहर के मन में अपने पिता के प्रति कोई दुर्भाव पैदा नहीं हुआ । पिताजी से बिना पूछे उनकी चीज़ उठाने पर उनसे मिली सज़ा वाज़िब ही है - ऐसा ही उसने सोचा । जवाहरलाल की माँ अपने बच्चे से बड़ी ही आत्मीयता और वात्सल्यपूर्ण व्यवहार करती थी । वह अक्सर अपने पुत्र को रामायण और महाभारत की कथाएँ सुनाया करती थी ।

जवाहरलाल का जन्मदिन प्रतिवर्ष बड़े ठाठ से मनाया जाता था । जवाहर को नये वस्त्र पहनाकर एक बड़े से तराज़ू के एक पलड़े में बिठाया जाता था; और दूसरे पलड़े में गेहूँ, तरकारियाँ वगैरह डालकर उसकी तुला की जाती थी । उन चीज़ों को बाद में गरीबों में बाँट दिया जाता था । बालक जवाहर को इस बात का बड़ा ही दुख रहता था कि यह वर्षगाँठ साल में एक ही बार क्यों आती है ?

जवाहरलाल छुटपन में एक सैनिक मित्र की मदद से टट्टू पर सवार होकर थोड़ा सा घूम लेता था । एक दिन वह अकेलाही घोड़े पर बैठकर निकल गया और रास्ते में घोड़े पर से कहीं गिर गया । बिना सवारी के घोड़ा लौट आया ।

उस समय मोतीलाल अपने रिश्तेदार व मित्रों के लिये दावत का प्रबन्ध करने में व्यस्त थे । जवाहर के बिना घोड़े को लौट आया देख सब लोग घबरा गये और सारे के सारे घबराहट के मारे उसकी खोज करने दौड़ पड़े ।

आख़िर बालक जवाहर को अकेले ही पैदल आते हुए देख सब लोग खुशी से फूल उठे । बड़े होने पर जवाहरलाल जी ने जब लोगों से इस बात की चर्चा की, तब उन्होंने कहा था - "उस दिन यह सोचकर सब लोग मेरी बहुत प्रशंसा कर रहे थे, कि मैं एक बड़ा ही साहसपूर्ण कार्य करके लौट आया हूँ ।"

कला की अभिरुचि

विदर्भ के राजा विचित्रसेन का स्वभाव बड़ा अनोखा था । एक बार कोई विचार उनके मन में घर कर लेता, तो वे पागल-जैसा उसके पीछे पड़ते । वे कहा करते - जब कोई अच्छा काम करने की बात मन में आती है, तो उस पर बहुत विचार नहीं करना चाहिए । इससे अच्छे अच्छे संकल्प पैदा होने से पहले ही मर जाते हैं । इस लिए यथासंभव शीघ्र कार्यान्वयन करना अच्छा !

एक दिन वे अलग अलग रंग मिलाकर कोई चित्र बना रहे थे । इस समय उनका उपसेनापति अपने किसी निजी काम से राजा के दर्शनार्थ आया । राजा को प्रसन्न करने के विचार से वह बोल उठा - "महाराज, चित्रकला के प्रति आपकी अभिरुचि से मैं परिचित हूँ । लेकिन मैं नहीं जानता था कि आप ऐसी महान कलाकृति का भी निर्माण कर सकते हैं । जिस अनोखी प्रतिभा के साथ आप यह अपूर्व चित्र खींच रहे हैं, उसे केवल अंतःपुर तक सीमित रखना कला के प्रति अन्याय ही कहलाएगा । "

उपसेनापति की बातें सुनकर राजा फूला न समाया । बोला - "मुझे लगता है, ये सब ललित कलाएँ संपन्न व्यक्तियों के लिए ही शोभा देती हैं । इनसे आम जनता का क्या कल्याण संभव है ? साधारण जन तो अपनी रोज़ी-रोटी के चक्कर में ही व्यस्त रहते हैं । इससे उनको फ़ुरसत ही कहाँ ? अगर कुछ समय मिला तो हल्का-छिछला मनरंजन कर लेते हैं । कला का रसग्रहण उनके बस के बाहर की बात है । इस लिए मुझे लगता है, सामान्य जनों में कला के प्रति अभिरुचि निर्माण करने के प्रयत्न व्यर्थ ही सिद्ध होंगे । "

उपसेनापति ने अपना तर्क पेश किया - "महाराज, हर कला का अंतिम लक्ष्य आत्मसंतोष ही तो है । आप जो कलाकृति

राश्मि चौधरी

निमार्ण कर रहे हैं, अन्य चित्रकारों द्वारा उसकी प्रतिकृतियाँ बना कर आम जनता में साधारण मूल्य पर वितरित की जा सकती है न? इसका परिणाम यह होगा कि आम जनता में कला के प्रति आदर बढ़ेगा और उनकी अभिरुचि जागृत होगी । कम से कम कोई भलामानस उसे आजमाकर तो देखे । हो सकता है, आपका ख्याल ग़लत साबित हो । ''

राजा को उपसेनापति की बात विचार करने योग्य लगी । वह चुपचाप सोचने लगा कि क्या किया जाए ? विचित्रसेन अपने चित्रों को जनता में विक्रय करने के हेतु एक अनुकूल योजना के संबंध में सोचने लगा ।

दूसरे दिन राजा ने अपने मंत्री माधव वर्मा से इस संबंध में सलाह की । मंत्री ने अपनी राय दी - ''महाराज, अत्यन्त मूल्यवान चित्रों को साधारण जनता में कम दाम पर बेचने के लिए खज़ाने से पर्याप्त धन खर्च करना पड़ेगा । भारी व्यय करने के बाद भी कहा नहीं जा सकता कि इससे प्रजा का सचमुच क्या हित होगा ? मुझे डर है कि इस योजना को कार्यान्वित करने से राज्य के अन्य आवश्यक प्रमुख कार्य अधूरे यह जाएँगे । ''

लेकिन विचित्रसेन को मंत्री की सलाह नहीं जँची । एक सप्ताह के अंदर राजा ने अनेक चित्रकारों को नियुक्त कर अपने बनाये तैल-वर्ण चित्रों की नकलें क़ीमती काठ पर उतरवाना शुरू किया और उन्हें सारे राज्य में अत्यन्त कम मूल्य पर बेचनेका प्रबंध किया ।

यों एक वर्ष बीत गया । एक दिन राजा ने मंत्री से कहा - ''मंत्री महोदय, मैं जानना चाहता हूँ कि मेरे द्वारा अंकित चित्रों का साधारण जनता पर कैसे प्रभाव पड़ रहा है ? हम वेष बदलकर व्यापारियों के रूप में देश भर भ्रमण करेंगे । ''

मंत्री ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में ही था। इस लिए उसने दूसरे ही दिन देशाटन का आयोजन किया ।

वे दोनों सीधे राजधानी की एक बड़ी दूकान पर पहुँचे । वहाँ कई प्रकार की कलात्मक वस्तुएँ ढंग से सजाये रखी थीं । विभिन्न चित्रकारों के चित्र भी यथास्थान रखे थे । राजा विचित्रसेन के चित्र मात्र कहीं दिखाई नहीं

दिये । एक कोने में देखा - राजा के चित्रों का एक ढेर धूल खाता पड़ा था ।

उस समय एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति दूकान में आया । उसने दूकानदार से कहा - "मैंने एक नया मकान बनवाया है । दीठ लगने से अपने मकान को बचाने के लिए मैं एक दीठ-चित्र खरीदना चाहता हूँ । लेकिन हर दूकानदार उसका मूल्य बहुत ज़्यादा बतला रहा है । सुना कि हमारे राजा विचित्रसेन के खींचे चित्रों को आप कम दाम में बेच रहे हैं । उनमें से एक चित्र आप मुझे दे देंगे ?"

इन बातों को सुनकर राजा को अपमान का अनुभव हुआ । राजा वहाँ से चल देना चाहते थे, कि एक चित्रकार ने दूकानदार से पूछा - "राजा विचित्रसेन द्वारा निर्मित दो चित्र मैं खरीदना चाहता हूँ । दे देंगे ?" और वह ज़ेब से पैसे निकालने लगा ।

मंत्री ने समझ लिया कि यह ग्राहक ज़रूर एक चित्रकार है । मंत्री ने उससे कहा - "बड़ी खुशी की बात है कि आप जैसे चित्रकार हमारे राजा के द्वारा चित्रित चित्र खरीद रहे हैं । इसका मतलब यह कि आप अपने शिष्यों के संमुख इन चित्रों को आदर्श के रूप में प्रस्तुत करेंगे । राजा विचित्रसेन के चित्र सचमुच बड़े सुंदर बन पड़े हैं । "

चित्रकार मुस्कुराते हुए बोला - "एक उत्तम चित्र के कलात्मक मूल्यों को गिराते हुए कैसे
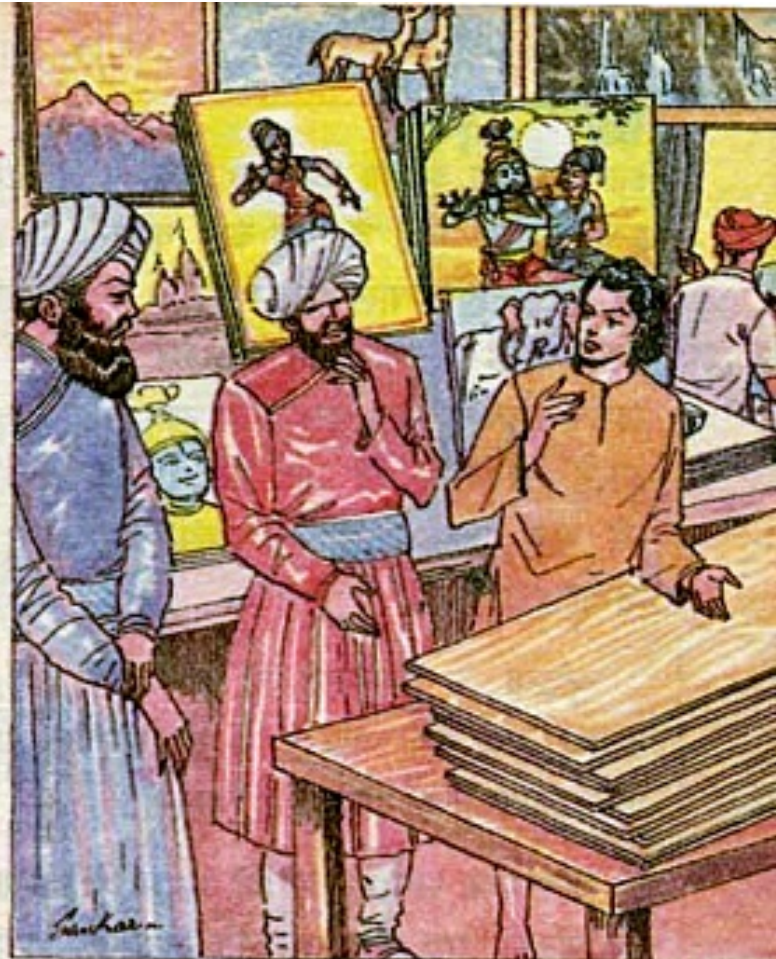
चित्र खींच जाते हैं, इसके उदाहरण स्वरूप में इन चित्रों को खरीद रहा हूँ । समझे ?"

यह सुनकर राजा का सिर चकराया और वे वहाँ से जाने को हुए, कि एक बुढ़िया राजा द्वारा चित्रित चार चित्र खरीदने के लिए आई ।

मंत्री ने वृध्दा माँ के निकट जाकर पूछा - "माई, तुमने एक साथ चार चित्र खरीद लिये ! मुझे लगता है, पुरानी पीढ़ी के लोगों में अभी तक कला के प्रति अभिरुचि जागृत है !"

मंत्री की बातें सुनकर बुढ़िया लज्जित होती हुई बोली - "महाशय, कला के प्रति अभिरुचि संपन्न व्यक्तियों में ही हो सकती है । मुझ जैसी ग़रीबिनी के दिल में कला-प्रेम कैसे संभव है भला ? मेरे विचार में

इन चित्रों को अंकित करने के लिए जो लकड़ी इस्तेमाल की गयी है, वह बड़ी कीमती है । मेरे पुराने खपरैलवाले मकान की दो खिड़कियाँ टूट गयी हैं । भारी दाम देकर मैं टीक नहीं खरीद सकती हूँ । इस लिए लकड़ी के ये टुकड़े खरीदकर ले जा रही हूँ । कला की बात आप जानिए । उससे मेरा क्या वास्ता ?''

बुढ़िया ने ईमानदारी से जो बातें कहीं, उसका उत्तर मंत्री क्या दे ? उसने राजा की ओर अपनी नज़र दौड़ायी । बस .....,

अब राजा समझ गया कि अपनी चित्रकला की प्रतिभा तथा कला के प्रति आदरपूर्ण भाव का जनसाधारण किस प्रकार अंदाज़ा लगा रहे हैं ।

राजा अपने मंत्री के साथ राजमहल लौटे और निराशा के साथ मंत्री से कहा - "मंत्री महोदय, सामान्य जनता के दिल में कला के प्रति अभिरुचि पैदा करने का प्रयत्न करके वास्तव में मैंने बड़ी भूल की । मेरे चित्रों की प्रतिकृतियाँ बनानेवाले चित्रकारों को आज ही सेवामुक्त कीजिए । ''

उत्तर में मंत्री ने कहा - "राजन्, आप अन्यथा न समझें तो एक नम्र निवेदन करना चाहूँगा । साधारण जनता के मन में ललित कलाओं के प्रति अभिरुचि पैदा करना नितान्त आवश्यक है । लेकिन इस कार्य में सच्चे प्रतिभाशाली कलाकारों को प्रवृत्त करना चाहिए । आपको चाहिए कि ऐसे नामवर कलाकारों को आश्रय दें । ''

मंत्री का सुझाव राजा को पसंद आया । उसने कुछ प्रतिभाशाली कलाकारों को चुनकर उनके मार्गदर्शन में कला-मंदिर स्थापित किये ।

चित्रकला में अभिरुचि रखनेवाले कई युवक और युवतियाँ इन मंदिरों में छात्र के रूप में प्रविष्ट हुए । साधारण जनता में धीरे धीरे कलाओं के प्रति रुचि और आदर बढ़ने लगा ।

नारद ने श्रीकृष्ण को यह समाचार सुनाया कि दूसरे ही दिन रुक्मिणी का विवाह संपन्न होनेवाला है । फिर वे चले गये । अब श्रीकृष्ण ने अपने आप्त-जनों से कहा - "नारद मुनि ने हमारे हितैषि बनकर जो बातें कहीं, उनको आप सब ने अच्छी तरह सुन लिया है । अब विलंब क्यों करें ? हम अपना कार्य आरंभ करेंगे । रुक्मिणी का विवाह कल ही संपन्न होने जा रहा है । अगर हम अभी प्रस्थान न करें, तो विवाह-मुहूर्त से पहले वहाँ पहुँच नहीं पाएँगे । और ऐसे में विवाह संपन्न हो गया, तो रुक्मिणी का क्या हाल होगा । अत एव अब विलंब करना समीचीन न होगा । हम इसी समय कुंडिनपुर की ओर रवाना हो जायेंगे । आप लोग अपने वाहन तथा सेनाओं को तैयार रखिए । प्रस्थान के समय ध्यान में रहे कि सब से आगे सात्यकी, मध्य भाग में बलराम और अंत में महाराजा उग्रसेन रहें । मैं दारक को साथ लेकर सब प्रकार के शस्त्रों के साथ सब से पहले आगे बढ़ूँगा; और शिशुपाल, रुक्मि और जरासंध आदि को उचित पाठ पढ़ाकर रुक्मिणी को प्राप्त करूँगा ।"

इसके बाद सेनाओं के प्रस्थान की सूचक दुंदुभि बजाई गई । सारे यादवों ने यात्रा की यथोचित तैयारियाँ की । इन सब तैयारियों को देख श्रीकृष्ण के मन में अत्यन्त संतोष हुआ । ऐसा अपूर्व उत्साह श्रीकृष्ण ने पहले कभी नहीं देखा था । सब की तीव्र इच्छा थी कि श्रीकृष्ण को रुक्मिणी के साथ ही विवाह करना चाहिए । अतः इसी समय अब द्वारका से कूच करना चाहते थे । सब में भरपूर

उत्साह था । फिर सज-सँवर कर वे रथ पर आरूढ हुए और प्रस्थान किया ।

श्रीकृष्ण वर की भाँति वैभवपूर्ण यात्रा संपन्न करके विदर्भ देश में पहुँच गये । जब वे कुंडिनपुर नगरी के समीप आये तब रुक्मिणी के पिता भीष्मक ने आगे आकर उनका स्वागत किया और उन्हें एक विश्रामगृह में ले गये । वहाँ पर श्रीकृष्ण का यथोचित अतिथि-सत्कार किया । भीष्मक को श्रीकृष्ण के आगमन पर अतीव संतोष था । ऐसे अतिथि को पाकर वे फूला न समाये । उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने कुछ प्रिय सेवकों को नियुक्त किया ।

विवाह-समारोह में पधारे समस्त राजाओं ने श्रीकृष्ण के आगमन की अपने अपने ढंग से आलोचना की । कुछ लोगों ने कहा - "शिशुपाल तो कृष्ण का फुफेरा भाई है । इसलिए उसका विवाह देखने वे यहाँ पधारे हैं । "

तो कुछ और लोगों से शंका प्रदर्शित की - "यह नहीं हो सकता । श्रीकृष्ण तो जरासंध और शिशुपाल के प्रबल शत्रु हैं ।इस विवाह में संमिलित होने वे कैसे आएँगे ?"

कुछ औरों ने तर्क किया - "रुक्मिणी के विवाह जैसा समारोह फिर कोई कब और कहाँ देखेगा ? इस लिए अपनी आँखों को संतोष और तृप्ति देने के लिए कृष्ण का आज यहाँ आगमन हुआ है । "

रुक्मिणी को जब समाचार मिला कि श्रीकृष्ण समस्त यादवों के साथ पहुँच गये हैं, तो उसे लगा मानों ग्रीष्म ऋतु में तप्त पृथ्वी पर शीतल वर्षा हुई हो । वह अत्यन्त हर्षित हो उठी । वह मन में सोचने लगी - "मेरे इस दुर्भाग्य के दिन मेरा उद्धार करने ही श्रीकृष्ण पधारे हैं । सचमुच मेरा जन्म सार्थक हो गया । मेरी कामना पूरी हो गई । जाने कब मैं उनके दर्शन कर सकूँगी ?"

रुक्मिणी कृष्ण के बारे में तरह तरह की कल्पनाएँ करने लगी । उसने अपनी सखियों को कृष्ण की रोचक कथाएँ बार बार सुनायीं । अब उसके मन में दीनता के स्थान पर उत्साह उमड़ने लगा । कुछ समय पहले पूरी निराशा में डूबी रुक्मिणी अब अपने प्रिय श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए आतुर हो उठी ।

रुक्मिणी का ऐसा उल्लास सखियों ने इससे पहले कभी नहीं देखा था ।

उधर श्रीकृष्ण भी अन्य सभी बातों का विचार छोड़ कर रुक्मिणी की स्मृति में डूब गये । वे सोचने लगे कि रुक्मिणी को कैसे देख पाएँगे ? उसका अपहरण कैसे करेंगे ? सामना करनेवाले शत्रुओं को कैसे पराजित करेंगे ? इस बात को कैसे मालूम कर लें कि रूक्मिणी ने सचमुच मन-ही-मन उनको वर लिया है ?

श्रीकृष्ण ने मन में और सोचा - "चाहे जो हो, अगर रुक्मिणी ने प्रणय की दृष्टि प्रसारित करके देखा तो देवताओं के रोकने पर भी मैं निश्चित ही उसको प्राप्त कर लूँगा । "

पूरब में पौ फटी । भँवरे कमलों पर गूँजने लगे । चक्रवालों का अंधापन जाता रहा, सरोवरों में हंस तैरने लगे । सूर्योदय हुआ । प्रातःकालीन क्रिया-कलाप समाप्त कर श्रीकृष्ण ने अपने को खूब अलंकृत किया । फिर बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने परिवार को लेकर विश्रामगृह से रथ पर आरूढ हो निकले । उनके मन में अत्यन्त बलवती थी रुक्मिणी को देखने की इच्छा ! उनका निश्चय था आज रुक्मिणी को यहाँ से द्वारका ले ही जाना है । दुष्ट रुक्मि की इच्छा को कभी पूरी नहीं होने देना है ।

उधर राजमहल में रुक्मिणी की सखियों ने उसका भली भाँति साज-सिंगार किया । श्रृंगार-प्रसाधन समाप्त होने पर रुक्मिणी एक सोने की पालकी पर सवार हो सखियों के साथ

चल पड़ी । नगरी के बाहर गौरी देवी का मंदिर बना था, उस गौरी की पूजा करनेके लिये वह पालकी में बैठी थी । मंदिर के निकट आते ही रुक्मिणी पालकी से उतर पड़ी और सखियों के साथ उसने मंदिर में प्रवेश किया । देवी को प्रणाम करके रुक्मिणी ने प्रार्थना की - "माते, मुझ पर अनुग्रह करके ऐसा कुछ कीजिए कि श्रीकृष्ण ही मुझे पति के रूप में प्राप्त हो । "

रुक्मिणी गौरी के मंदिर में पूजा समाप्त कर जब बाहर आई, ठीक उसी समय श्रीकृष्ण वहाँ उपस्थित हुए और तब उन्होंने पहली बार रुक्मिणी को देखा । उन्हें ऐसा लगा मानो अभी अभी क्षीरसागर से लक्ष्मी देवी ऊपर

उठी हो । उन्हें ऐसा भी लगा कि ब्रह्मा की सृष्टि में ऐसा अलौकिक लावण्य अन्यत्र दुर्लभ है । श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के बारे में जो कुछ सुना था, उसके आधार पर अब तक वे किसी प्रकार अपने ऊपर नियंत्रण रख सके थे; परंतु अब जब प्रत्यक्ष उसे देखा तो वे अपने प्रणय-उद्वेग पर नियंत्रण नहीं कर पाये ।

श्रीकृष्ण सोचने लगे, रुक्मिणी को अपना बनाने के लिए सौभाग्य से उचित स्थान और समय अभी प्राप्त है । इस अवसर को गँवाना मूर्खता होगी ।

श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को इस समय पहली बार देखा । सखियों ने उसको बताया कि ये ही श्रीकृष्ण हैं । रुक्मिणी ने आँख भरकर श्रीकृष्ण को देख लिया । आज तक वह जिनके चिंतन और ध्यान में लगी थी, वे अचानक उसकी आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो गये । वह एकदम आश्चर्य और आनन्द में डूब गयी । उसकी काया रोमांचित हो उठी । उसकी आँखों से आनंदाश्रू झर निकले । समाधिस्थ योगी की भाँति वह अपने आप में तन्मय हो गयी । उसकी इस हालत को देख सखियाँ भयभीत हो उठीं ।

इधर बलराम श्रीकृष्ण से आकर मिले । श्रीकृष्ण ने बलराम को अपनी योजना संक्षेप में बता दी । श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को आलिंगन किया और उसको अपने रथ पर बिठा दिया । अब रुक्मिणी की सखियाँ घबड़ा गयीं । पासवाले सैनिक श्रीकृष्ण पर टूट पड़े । यह देख बलराम ने एक वृक्ष उठा लिया और आगे बढ़नेवाले रथों, हाथियों, घोड़ों और सैनिकों को मार-मार कर भगा दिया ।

यह हो-हल्ला सुनकर उग्रसेन, सात्यकी, शतद्युम्न, विदूरथ, प्रसेनजित्, वृष्णि, भोजाष्डक वीर इत्यादि अपने दल-बल के साथ आकर बलराम की सहायता करने लगे । उन सब लोगों ने श्रीकृष्ण को सलाह दी - ''हे श्रीकृष्ण, आप रुक्मिणी को लेकर द्वारका की राह पकड़िए । इन सब लोगों को हम देख लेंगे । ''

एक तरफ दोनों दलों के बीच संग्राम चल रहा था, दूसरी तरफ रुक्मिणी के बचे हुए अंगरक्षकों ने जाकर रुक्मिणी के अपहरण की कथा भीष्मक, जरासंध, शिशुपाल तथा उनके
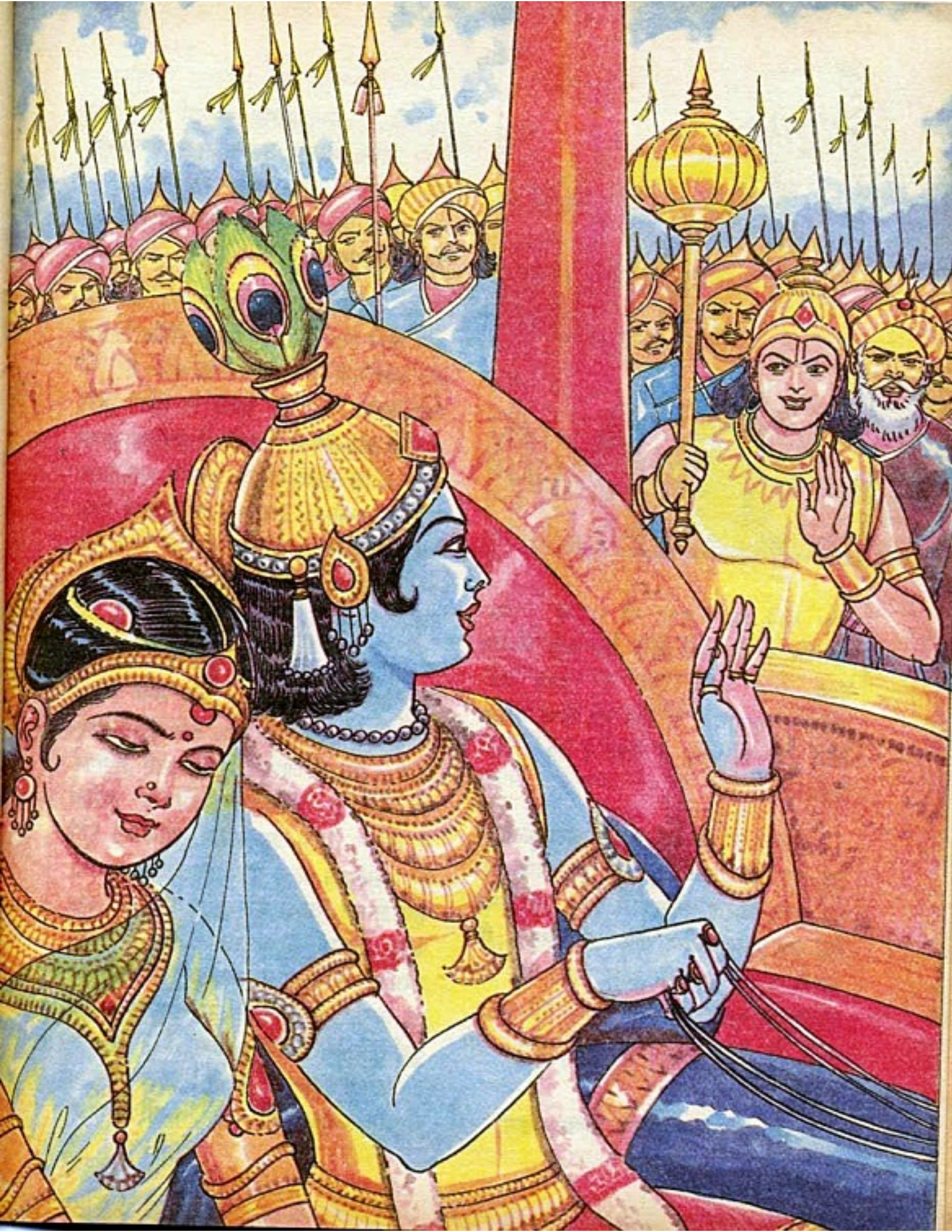
साथ आये हुए राजाओं को सुनायी । यह समाचार पाकर सब लोगों को बड़ा विस्मय हुआ । वे सोचने लगे - "इतने सारे अतिरथी महारथियों के होते हुए कृष्ण ने यह कैसा दुस्साहस किया । कैसा है यह उसका अहंकार ! "

जरासंध की आँखें क्रोधवश लाल-पीली हो गईं और वह गरज उठा - "एक गोपक का पुत्र जगत्-विजेता के रूप में आया और उसने मेरा सब किया-कराया चौपट कर दिया । मैं अपनी समस्त सेना के साथ जाकर उस पर हमला करनेवाला हूँ । जो लोग मेरी मदद करने के लिए आना चाहते हैं, तैयार हो जाइए । "

आगे चल कर उसने घोषित किया - "द्वारका के लिए समुद्र ही दुर्ग बना हुआ है । अगर श्रीकृष्ण उसके अंदर भी प्रवेश करें, तो भी मैं उसको तथा उसके रिश्तेदारों को मार कर द्वारका को ध्वस्त करके रुक्मिणी को वापस ले आऊँगा । "

अब पौंड्रक वासुदेव ने जरासंध को रोका और बोल उठा - "आपके इस सेवक के होते हुए आप क्यों यह श्रम उठाना चाहते हैं ? मैं खुद जाकर उस चोर कृष्ण के टुकड़े-टुकड़े करूँगा और जंगली पक्षियों को स्वादिष्ट आहार दूँगा । इस पृथ्वी पर दो वासुदेव एक साथ नहीं रह सकते । इस भूल को सुधारने तथा आपको आनन्द प्रदान करने के लिए मुझे अच्छा अवसर मिल रहा है । मुझे और क्या चाहिए ? "

इस बीच एक भारी अस्त्र हाथ में लिये शिशुपाल उठ खड़ा हुआ और उच्च स्वर में बोला - "आप सब लोग रुक जाइए, कोई आगे न बढ़े । जो कुछ हुआ, उसमें अपमान तो मेरा है । विवाह करने के उत्साह में आकर मैं ही इस प्रकार अपमानित हुआ हूँ । मेरे इस अस्त्र से मैं उस कृष्ण का तथा शेष समस्त यादवों का संहार करूँगा । इस प्रकार जरासंध का यह सेवक अपार यश प्राप्त करेगा । कोई सच्चा क्षत्रिय क्या पराये स्त्री की कामना करता है ? इस श्रीकृष्ण ने कैसा दुर्व्यवहार और अत्याचार किया है ? रिश्ते-नाते न रखनेवाले पशुओं के बीच पलकर बड़े हुए से क्या अपेक्षा कोई करे ? अतः कृष्ण का

वध करके रुक्मिणी को वापस ले आना इस क्षण मेरा प्रथम कर्तव्य है ।''

जरासंध आदि राजा कवच धारण कर रथों पर सवार हो युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये । सारी सेना शंखनाद के साथ विविध वाद्य बजाते हुए ठाठ से द्वारका की ओर चल पड़ी । ये सब लोग शीघ्र ही रथ पर रुक्मिणी को ले जानेवाले कृष्ण और उनके पीछे जानेवाली यादव सेना के पास जा पहुँचे ।

बलराम तथा यादव वीरों ने अपनी सेनाओं को रोका और जरासंध के सैनिकों के साथ युद्ध करना शुरू किया । यादव सेना की तुलना में जरासंध की सेना बहुत बड़ी थी, फिर भी जरासंध की सेना के कतिपय योध्दा मारे गये । दोनों पक्षों के वीरों ने द्वंद्व-युद्ध किये । सात्यकी तथा जरासंध के बीच भयंकर युद्ध हुआ । चक्रदेव तथा अक्रूर ने मिलकर दंतवक्त्र से युद्ध किया । शिशुपाल ने एक साथ तीन यादव वीरों का सामना किया । कृतवर्मा तथा पौंड्रक वासुदेव के बीच दारुण युद्ध हुआ ।

बलराम ने सब से अधिक शत्रुओं का संहार किया । शत्रुदल से जरासंध ने भी भयंकर युद्ध किया । अंत में बलराम और जरासंध ने गदायुद्ध किया, जिसमें जरासंध बेहोश हो गया । यह दृश्य देख उसकी सेनाएँ भागने लगीं । भागनेवाली सेना का सात्यकी ने पीछा किया । सात्यकी ने जब शंख-ध्वनि करना शुरू किया तो श्रीकृष्ण ने

जान लिया कि जरासंध भाग गया है । तब श्रीकृष्ण ने पांचजन्य बजाया ।

कृष्ण के द्वारा रुक्मिणी के अपहरण का समाचार पाकर जरासंध आदि राजा जब अपने पड़ावों से निकल पड़े, तब राजमहल में रुक्मि को भी यह समाचार प्राप्त हुआ । उसको बड़ा क्रोध आया और अपने पिता तथा रिश्तेदारों के समक्ष उसने शपथ ली - "युद्ध में कृष्ण का वध करके रुक्मिणी को वापस लाये बगैर मैं इस नगरी में कदम नहीं रखूँगा । फिर गद, कैशिक आदि वीरों को साथ लिये युद्ध के लिए तैयार हो वह निकल पड़ा । दक्षिण देश के कई राजा उसके साथ निकले ।

जब वे नर्मदा के तट पर पहुँचे जो उनको

श्रीकृष्ण का रथ आगे बढ़ता हुआ दिखाई दिया । तब रुक्मि ने तेज़ गति से अपना रथ आगे बढ़वाया । श्रीकृष्ण के रथ के सामने जाकर उसने ललकारा – "अरे, पराये पुरुष की पत्नि का अपहरण करनेवाला तू कहाँ जाएगा ? मैं हूँ विदर्भ का राजपुत्र रुक्मि ! अगर तू अपने प्राण बचाना चाहता है तो शीघ्र रुक्मिणी को छोड़ दे । नहीं तो मेरे साथ युद्ध के लिए तैयार हो जाओ । " भरे विवाह-मंडप से किसी की वाग्दत्त वधु को उठा ले आना तुम्हारे जैसे वीर को शोभा नहीं देता । लेकिन तुम से कोई और क्या उम्मीद करे ? ऊधम मचाना ही तुम्हारा धर्म है । जाने यह कुबुद्धि तुम कब छोड़ दोगे ? अभी सजग हो जाओ, और रुक्मिणी को मुक्त करो । दूसरे की होनेवाली पत्नी को उठा ले जाने से तुम्हारी जो दुष्कीर्ति होगी, उससे बचने का अभी समय है । इस ललकार के साथ रुक्मि ने कृष्ण पर बाणों की बौछार शुरू की ।

श्रीकृष्ण ने उसी क्षण रुक्मि के सारथि को मार डाला और रुक्मि पर बाण छोड़े ।

रुक्मि का बुरा हाल देख दक्षिण देश के राजाओं ने अपने मित्र को घेर लिया और श्रीकृष्ण से लड़ने भिड़े । दक्षिण देश के राजा और श्रीकृष्ण के बीच भयानक युद्ध हुआ । रुक्मि ने थोड़ी देर में अपने को सम्हाला और दूसरे रथ पर सवार हो कृष्ण से जूझने आया । श्रीकृष्ण ने उसके वक्ष पर तीन बाण छोड़े और उसे घायल कर दिया । रण-भूमि पर बेहोश पड़े अपने भाई की दुर्गति देख कर श्रीकृष्ण के रथ पर बैठी रुक्मिणी विलाप करने लगी । श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को समझाया – "प्रिय, यह विलाप करनेका समय नहीं है । कोई भाई अपनी बहन का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी से कर सकता है ? रुक्मि तुम्हारा भाई अवश्य है । पर उसने तुम्हारे प्रति जो अन्याय किया है, उसका उसे दंड देना आज मेरा पवित्र कर्तव्य है ।

श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को सान्त्वना दी और फिर रथ को द्वारका नगरी की ओर मोड़ लिया ।

सही इलाज

नजीबाबाद में ब्रह्मदत्त नामक एक युवक रहा करता था । एक दिन वह अपनी बीमार माँ को लेकर जब वैद्य के घर पहुँचा, तब आगे के कमरे में बहुत से रोगी पहले ही बैठे हुए थे । ब्रह्मदत्त अपनी माँ को एक कोने में बिठाकर "माँ, हमारी बारी आने में काफी समय लगेगा, तब तक मैं ज़रा बाज़ार हो आता हूँ । " ऐसा कहकर वहाँ से चला गया ।

ब्रह्मदत्त वैसे २५ साल का युवक हो चुका था; लेकिन वह कोई भी काम ढँग से करना नहीं जानता था; इसलिये उसे कोई काम भी नहीं देता था । ब्रह्मदत्त के बचपन में ही उसके पिताका स्वर्गवास हो गया था, इसलिये माँ ने उसे बहुत लाड़-प्यार से पाला था । परिणाम स्वरूप वह पढ़ाई में कच्चा निकला । वह आलसी भी था । बुरी संगत में पड़कर जुआ खेलने जैसी आदतों का शिकार होकर वह जब-तब छोटी-मोटी चोरियाँ भी करता था । इधर थोड़े दिन से उसके मन में यह विचार आया था कि, जहाँ तक बन सके, जल्द ही कोई मोटी सी रक़म हाथ आये ।

माँ को वह वैद्य के घर ले गया - उसके एक दिन पहले उसने गाँव के छोर पर स्थित तालाब के पास टोह लगायी । अँधेरा फैलते वक्त एक व्यक्ति उस ओर आ निकला । ब्रह्मदत्त झट पेड़ की ओट से बाहर आकर उस आदमी की छाती पर छुरी टिकाकर गरज उठा, "अपने हाथ की थैली चुपचाप मुझे सौंप दो । "

वह आदमी डर के मारे काँप उठा और थैली नीचे फेंक कर गाँव की ओर दौड़ पड़ा । थैली में ब्रह्मदत्त को चार हज़ार रुपये नक़द मिले । उसकी समझ में न आया की इतनी मोटी रकम का क्या करे । उसने केवल एक सौ रुपये निकाल कर बाक़ी रक़म के साथ थैली वहीं एक इमली के पेड़ के खोखले में रख दी ।

ब्रह्मदत्त रात को जब घर लौटा तो उसने

सुधाकर कुलश्रेष्ठ

देखा कि माँ सर्दी और बुखार से थरथर काँप रही है । हाथ में रुपये थे, इसलिये वह बड़े आत्मविश्वास से बोला, "माँ, तुम्हारा सही इलाज़ होना चाहिये । कल मैं किसी अच्छे वैद्य के पास तुम्हें ले जाऊँगा । "

इसी भावना से दूसरे दिन वह अपनी माँ को वैद्य के पास ले आया । माँ को वैद्य के पास छोड़कर वह थोड़ी देर गलियों में घूमता रहा और फिर वैद्य के घर चला गया । उसकी माँ वहाँ कोने में अकेली पड़ी हाथपाँव पटक रही थी और वैद्य उसकी नाड़ी-परीक्षा कर रहा था । "वैद्यजी, मेरी माँ को क्या हो गया है ?" पूछता हुआ ब्रह्मदत्त तुरन्त माँ की बगल में बैठ गया । उसने माँ के दोनों हाथ अपने हाथ में ले लिये ।

"क्या, तुम इस बूढ़ी के बेटे हो ? तुम तो वक्त पर आ गये । तुम्हारी माँ के बदन में वायु का प्रकोप हो गया है । कलछी को आग में तपाकर इसके बदन में दाग लगाना होगा । " वैद्य ने कहा ।

इतने में वैद्य का नौकर एक कलछी को तपाकर ले आया । ब्रह्मदत्त ने माँ के हाथ कसकर पकड़ लिये । परंतु माँ के हाथ पर दाग लगाने के बदले वैद्य ने उसके ही हाथ पर दाग लगाया । पीड़ा से ब्रह्मदत्त चीख उठा ।

"उफ ! कैसी भूल हो गयी मेरे हाथों ! ऐन वक्त तुम्हारा हाथ ऊपर आ गया । वह दाग तुम्हारी माँ के हाथ पर लगता, तो वह बच जाती, बेचारी !" वैद्य ने अफ़सोस से कहा ।

माँ की मृत्यु और हाथ के दाग की जलन ने ब्रह्मदत्त को जैसे पागल बना दिया । उसने एकदम वैद्य की गर्दन पकड़ कर ललकारा,

"तुम ने मेरी माँ को मार डाला । तुम वैद्य नहीं, हत्यारे हो हत्यारे । "

ब्रह्मदत्त के हाथ को हटाकर वैद्य बोला, "मैं आज तक सोच रहा था कि तुम केवल चोर हो; लेकिन आज मुझे मालूम हुआ कि तुम हत्यारे भी हो । कल तुम ने जिस आदमी का धन लूटा था, वह एक पिता, अपना खेत बेचकर अपनी बेटी की शादी के लिये जुटा कर ले जा रहा था । चोरी के कारण अब अपनी शादी असंभव है – इस विचार से उसकी बेटी कुएँ में कूद पड़ी । पिता के पास बेटी के दाह संस्कार के लिये भी रुपये नहीं है, इस कारण वह विलाप कर रहा है । तुम ने उस शादी को रोका इसलिये तुम्हारे हाथ पर दाग पड़ गया है और यही तुम्हारी माँ की मौत का कारण बन गया है । "

वैद्य के मुँह से ये बातें सुनकर ब्रह्मदत्त अपनी करनी पर पछताने लगा । उसने जो चोरी की थी, उसके पश्चाताप की आग उसके कलेजे को जलाने लगी । वैद्य के चरण पकड़ कर वह बोला, "उस लड़की के पिता के शाप ने ही मेरी माँ को मृत्यु के मुँह में ढकेल दिया । आइन्दा मैं कड़ी मेहनत करके कमाऊँगा और मेरी माँ की अन्त्येष्टि का खर्च ले आऊँगा । तभी मेरी माँ की आत्मा को शान्ति मिलेगी । " इतना कहकर ब्रह्मदत्त बाहर चला गया ।

ब्रह्मदत्त के बाहर जाते ही उस की माँ उठ बैठी और वैद्य से बोली, "महाराज, मुझे आज तक मालूम ही नहीं था कि मेरा बेटा चोर है । आप ही उसका सही इलाज करके उसमें यह

परिवर्तन ला सके ।"

"मेरे मन में तो शंका थी, कि हमने जो योजना बनायी, उससे उसके भीतर परिवर्तन होगा कि नहीं । इसी शंका से प्रेरित होकर मैंने जान बूझकर उसके हाथ पर दाग लगाया । अब उस दाग का इलाज़ मैं मुफ्त में करूँगा ।" वैद्य ने हँसने हुए कहा ।

अब तक भीतरी कमरे में बैठा हुआ वैद्य का रिश्तेदार बाहर आ गया और वैद्य के निकट बैठते हुए बोला । "यह अच्छा हुआ कि ब्रह्मदत्त अपनी माँ को लेकर जब तुम्हारे पास इलाज़ कराने आ रहा था, तब मैंने उसको पहचान लिया कि इसीने मेरा धन लूट लिया है । हम सब ने मिलकर जो योजना बनायी, वह खूब सफल रही । लेकिन यह बताओ यह तुम ने वधू बननेवाली कन्या की आत्महत्या की कहानी क्यों गढ़ ली ?"

"ब्रह्मदत्त के मन को पिघलाने के लिये मैंने एक कल्पित कहानी गढ़ ली ।" कहते हुए वैद्य हँस पड़ा ।

धन की थैली लेकर कमरे में प्रवेश करते हुए ब्रह्मदत्त ने उन की बातचीत सुन ली और अन्दर आकर उसने कहा, "सब की दृष्टि में चोर बनकर जीने की अपेक्षा मर जाना कहीं अच्छा है । मेरी माँ ने फिर जीवित होकर मुझ को पुनर्जन्म प्रदान किया है । आज से मैं मेहनत करके कमा लूँगा ।" इतना कहते हुए उसने धन की थैली वैद्य के रिश्तेदार के हाथ सौंप दी । ब्रह्मदत्त को अपने किये का बहुत पछतावा हुआ । उसने भगवान से प्रार्थना की – "मुझे सन्मति दे भगवान् ! अब मैं कभी चोरी नहीं करूँगा । चोरी का धन कभी काम नहीं आता । अब मुझे अच्छा सबक़ मिल गया । मैं मेहनत करूँगा और परिश्रम से जो पैसा मिलेगा उसी का उपभोग करूँगा । यही बात इससे पहले मैं समझ जाता तो कितना अच्छा होता !"

ब्रह्मदत्त में हुए इस परिवर्तन को देख उसकी माँ के साथ वैद्य और उसका रिश्तेदार भी अत्यन्त प्रसन्न हुए । दोनों ने हाथ उठाकर मनःपूर्वक ब्रह्मदत्त को आशीर्वाद दिया ।

किस्मत

एक गाँव में दो बूढ़े रहते थे । उनमें से एक दुष्ट प्रवृत्ति का था, और दूसरा उत्तम प्रवृत्ति का । एक बार नये वर्ष के पहले दिन दोनों की मुलाक़ात हुई ।

उत्तम व्यक्ति ने कहा - "आज रात को मैंने एक सपना देखा । मेरी क़िस्मत आसमान से टूट पड़ी । "

"अरे, बड़ी अजीब बात है । मैंने भी रात को एक सपना देखा । मेरी क़िस्मत ज़मीन के अंदर से बाहर निकलती मैंने देखी । " दुष्ट आदमी ने अपना समाचार सुनाया ।

"देखें, अब किसकी किस्मत कहाँ से आन पड़ती है । " कहता हुआ भला आदमी घर की ओर चल दिया ।

यों कुछ दिन गुज़र गये । जाड़े का मौसम खतम होने को था । अच्छे आदमी ने सोचा - "आज का दिन शुभ दिन है । क्यों न आज के दिन खेत का काम प्रारंभ कर लें ?" इस विचार से कुदाल और फावड़ा उठाये अपने खेत पर जा पहुँचा और ज़मीन खोदना शुरू किया ।

अचानक कुदाल किसी सख्त चीज़ से टकराई और खन्-खन् की आवाज़ आई । उसको बड़ा आश्चर्य लगा कि उसके खेत में यह प्रतिध्वनि करनेवाला पत्थर कहाँ से आया । फिर उसने और खोदना शुरू किया, तो ज़मीन के गर्भ से एक कलश निकला । विस्मय के साथ उसने कलश का ढक्कन खोला, उसके अंदर सोने की मोहरें और अशर्फ़ियाँ दिखाई दीं । भले आदमी ने उस कलश को पुनः यथास्थान रख दिया ।

उसने सोचा - "यह खज़ाना ज़रूर उस बूढ़े का होगा । "

दुष्ट आदमी के पास जाकर बोला "महाशय, आपकी किस्मत मुझे अपने खेत में प्राप्त हो गई है । कलश भर सोने की मोहरें

जापान की एक लोककथा

और अशर्फियाँ मिल गई हैं । मेरे खेत में जाकर अपना ख़ज़ाना ले आओ । '' फिर भला आदमी घर चला आया ।

उसने घर पहुँचते ही सारा क़िस्सा अपनी पत्नी को सुनाया और बोला - "अब तक वह अपना कलश ले गया होगा । ''

"तुम ने बहुत ही अच्छा किया । '' उत्तम व्यक्ति की पत्नी ने कहा ।

इस बीच दुष्ट आदमी उत्तम व्यक्ति के खेत पर पहुँचा । जहाँ खुदाई हो गयी थी, वह जगह साफ़ नज़र आ रही थी । गड्ढे के ऊपर ढकी मिट्टी को दूर करते ही उसे वह कलश दिखाई दिया । उसने बड़ी आतुरता से कलश का ढक्कन खोल दिया । सोने की मुहरें और अशर्फियों के बदले उसे कलश के अन्दर कुंडली मारनेवाले साँपों के दर्शन हुए । यह देखकर दुष्ट व्यक्ति क्रोध से आग-बबूला हो गया ।

"बदमाश ने मेरे साथ दग़ा किया । मैं उसको अच्छा सबक़ सिखाऊँगा । उससे इसका प्रायश्चित कराऊँगा । '' ऐसा कुछ सोचते हुए दुष्ट उस कलश के साथ अपने घर पहुँचा ।

रात हुई तो दुष्ट आदमी भले व्यक्ति के घर गया, सीढ़ी लगाकर उसके मकान की छत पर पहुँचा और धुएँ की चिमनी में से भीतर झाँक कर देखा । भला आदमी अलाव की तरफ पीठ करके बदन सेंक रहा था । उसे दग़ा देकर निश्चिन्त हो बदन सेंकनेवाले उत्तम व्यक्ति को देखकर उसका क्रोध और भड़क उठा । उसने कलश का ढक्कन खोल दिया और धुएँ की चिमनी के छेद से उसे अन्दर की ओर ढकेल दिया ।

लेकिन दुष्ट व्यक्ति ने जैसा सोचा था, वैसा नहीं हुआ । साँपों की जगह सोने की मोहरें और अशर्फियाँ भले व्यक्ति के चारों ओर बिखर गईं । बडी खुशी से उसने अपनी पत्नी को जगाया और कहा - "देखो, मेरा सपना सच निकला । हमारी क़िस्मत आसमान से टूट पड़ रही है । देखो न ! ''

अब उत्तम व्यक्ति की दरिद्रावस्था समाप्त हो गई । अपना समस्त शेष जीवन वह सुखपूर्वक बिताता रहा ।

नौकर की युक्ति

एक गाँव में एक साधारण किसान रहा करता था । उसने शादी नहीं की थी, इसलिए घर का काम-काज संभालने के लिए उसने एक रसोइये को नियुक्त किया था । वह पाक-कला में निपुण था ।

एक साल आम का मौसम आ गया । एक दिन किसान किसी काम पर जा रहा था, तब एक परिचित व्यक्ति मिला । उसने कहा - "मेरे पास एक बहुत अच्छे किस्म के आम आये हैं, तुम्हें भी दो फल देना चाहता हूँ । खाकर देखो, तो मालूम होगा क्या बढ़िया स्वाद है !" और उसने दो फल किसान के हाथ में धर दिये । किसान अपने घर लौटा ।

अपने रसोइये के हाथ में आम देकर उसने कहा - "सुनो, इन्हें अच्छी तरह धोकर काट कर रख दो । मैं अभी बाहर जाकर आता हूँ । " फिर वह अपने काम के लिए चला गया ।

रसोइये ने दोनों आम अच्छी तरह धोकर साफ किये, काट कर उनके टुकड़े बनाये और उनका स्वाद चखने के विचार से एक टुकड़ा अपने मुँह में डाला । उसका स्वाद सचमुच बहुत बढ़िया था । उसने सोचा - इन टुकडों में से दो-चार कम हुए तो किसी के ध्यान में नहीं आएगा । यह सोच कर उसने और दो टुकड़े खा लिये । ज्यों ज्यों यह आम के टुकड़े खाता गया, त्यों त्यों उनका स्वाद बढ़ता गया । दो आमों के टुकड़े करते हुए लगभग आधे टुकड़े उसने स्वाहा कर लिये । बचे हुए टुकड़ों को देख कर अब रसोइये को डर लगा ।

वह सोचने लगा - "अब मैं क्या करूँ ? अगर मालिक से कहूँ कि काटे गये टुकड़ों में से आधे मैं ने खा लिये तो वह अक्षम्य अपराध माना जाएगा । इस लिए अब कुछ-न-कुछ बहाना बनाना ही पड़ेगा । छोटा

बहाना बनाने से बेहतर होगा कि कोई बड़ा-सा बहाना बना लूँ । यह बहाना सरल होगा कि मालिक को बता दें - आम खो गये । ''
यही इरादा पक्का करके रसोइये ने बाकी बचे टुकड़े भी खा डाले, और छिलके तथा गुठलियों को दूर जाकर फेंक दिया । थाली को साफ़ कर दिया और फिर मालिक की प्रतीक्षा करने लगा ।

किसान अपना काम पूरा करके घर लौट रहा था, कि उसे रास्ते में कोई साधु मिला । साधु को देखते ही किसान के मन में विचार आया कि आम के कुछ टुकड़े क्यों न साधु को खिलाये जाएँ ? अनायास पुण्य मिलेगा । उसने साधुसे बातचीत करके जान लिया कि वे किसी दूर के प्रदेश से आये हैं । किसान ने साधु से निवेदन किया - ''स्वामीजी, मेरा घर यहाँ पास में ही है । मेरे घर पधारिए । आपका दस मिनट से अधिक समय न लूँगा । मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिए । ''

साधु ने किसान की प्रार्थना मंजूर की और उसके घर पहुँच गया । किसान ने साधु को आदरपूर्वक घर में बैठाया और घर के अंदर जाकर रसोइये से कहा - ''देखो, मेरे साथ एक साधु अपने घर पधारे हैं । तुमने आम काटकर तैयार ही रखे होंगे । क्यों न साधु को आम के कुछ टुकड़े खिला दें ?''

''मालिक, मैं कैसे आम काटूँ ? यह छुरी तो बिलकुल पुरानी हो गयी है । इस में ज़ंग लगी है, देखिये । '' कहते हुए रसोइये ने एक पुरानी छुरी मालिक के सामने धर दी ।

''ओह, यह बात है ! मैं अभी इसमें सान धरता हूँ । घर पधारे साधु को बिना कुछ खिलाये कैसे बिदा किया जा सकता है ?'' ऐसा कहकर किसान घर के पिछवाड़े गया और एक पत्थर पर छुरी को सान धरने लगा ।

रसोइया बाहर साधु के पास आया और साधु के कान में धीरे से बोला - ''स्वामीजी, आप हमारे मालिक के चंगुल में कैसे फँस गये ? क्या आपने इनके बारेमें कुछ सुना नहीं ?''

''बेटा, मैं क्या जानूँ ? मैं इस गाँव में नया आया हूँ । तुम्हारे मालिक से आज ही मेरा परिचय हुआ । '' साधु ने उत्तर दिया ।

''सुनिये, हमारे मालिक शक्ति-पूजा करते हैं । आप के जैसे साधु दिखाई दें जो उन्हें घर बुलाकर लाते हैं, और दोनों कान काट कर

शक्ति के लिए नैवेद्य चढाते हैं । उन्होंने इस प्रकार कई लोगों के कान काट डाले हैं । ध्यान से सुनिये, छुरी को सान पर चढ़ा रहा है ।

वह चाहता है कि कान काटते समय आप जैसे व्यक्ति को अधिक पीड़ा न पहुँचे । '' रसोइये ने साधु को निवेदन किया ।

यह सब जानकर साधु बेचारा मारे डरके वहाँ से निकल पड़ा । किसान तेज़ छुरी के साथ अन्दर आया और उसने रसोइये से कहा - "देखो, अब यह छुरी खूब तेज़ हो गयी है, इस पर कहीं भी ज़ंग नहीं है । जल्दी आम काटो, स्वामीजी मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे !"

रसोइये ने कहा - "मालिक, फल कहाँ और साधु कहाँ ? आप जैसे ही पिछवाड़े चले गये, स्वामीजी घर के अन्दर आये, दोनों आम उठाकर अपने झोले में डाल दिये, और खिसक गये यहाँ से । मैं भला क्या कर सकता ?"

"क्या साधू ने दोनों फल ले लिये ? मेरे लिये एक भी नहीं छोड़ा ? कम से कम उसका स्वाद तो लेता !" किसान ने आश्चर्य से कहा ।

रसोइये ने कहा - "मैंने उनको खूब पुकारा, पर उन्होंने एक न सुनी और आगे बढ़ते ही गये । ''

किसान हाथ में छुरी लेकर वैसे ही साधु के पीछे पड़ा । कुछ दूर तक दौड़ने पर उसे साधु दिखाई दिया ।

अपने छुरीवाले हाथ को ऊपर उठाते हुए किसान ने ज़ोर से पुकारा - "स्वामीजी, थोड़ा-सा रुक जाइए । '' पीछे मुड़कर साधू ने देखा । किसान के हाथ में छुरी देखकर उसका कलेजा काँप उठा । वह और तेज़ भागने लगा ।

"स्वामीजी, मुझे दो नहीं चाहिए । कम से कम एक जो दीजिएगा न ?" साधु का पीछा करते हुए किसान ज़ोर से चिल्लाया ।

किसान की पुकार सुनकर साधू का डर और भी बढ़ गया । उसने सोचा कि यह दुष्ट उससे कम-से-कम एक कान माँग रहा है । किसान से बचने के लिए साधु और तेज़ी से दौड़ने लगा । किसान बेचारा थक कर निराश हो गया और घर की ओर लौटा ।

अपनी युक्ति को सफल होने देख रसोइया मन-ही-मन अपने ऊपर खुश हुआ ।

प्रत्यक्ष पाठ

रामस्वरूप एक छोटा-सा व्यापारी था ।

उसके गाँव से चार कोस की दूरी पर एक शहर था, जहाँ हफ़्ते में एक दिन बाज़ार लगता । रामस्वरूप बाज़ार में जाकर माल खरीदकर ले आता और गाँव की अपनी छोटी दूकान पर उसे बेचता था ।

एक बार बाज़ार के दिन रामस्वरूप रुपये लेकर शहर के लिए निकल पड़ा । लेकिन उसे निकलने में आज कुछ देर हुई थी, शहर जानेवाली सारी किराये की गाड़ियाँ चली गई थीं । इस लिए अब वह सोचने लगा - शहर पैदल जाएँ अथवा एक हफ़्ते भर उसकी दूकान बंद रखी जाए ? अगर वह बाज़ार न जाए तो एक हफ़्ते भर उसकी दूकान में माल नहीं बेचा जाएगा । उसे कम आमदनी होगी ।

अतः रामस्वरूप ने निश्चय किया कि चाहे जो हो, उसे पैदल बाज़ार जाना चाहिए । फिर उसने रुपयों की थैली कमर में बाँध ली और शहर की तरफ़ निकला ।

चलने की आदत न होने के कारण थोड़ी दूर चलने पर रामस्वरूप के पैर थक गये । वह खीझकर सड़क के निकारे एक पेड़ के नीचे बैठ गया । कुछ समय के बाद एक अजनबी उधर से आ निकला और उसने रामस्वरूप से पूछा - "भाई, बैठे हो यहाँ, कहाँ जाना है ?"

रामस्वरूप ने बताया - "कुछ माल खरीदने के लिए बाज़ार जा रहा था । चलते चलते थक गया, इस लिए इस पेड़ की छाँव में आराम कर रहा हूँ । "

अपरिचित आदमी ने अपने सिर से एक भारी गठरी नीचे उतार दी और रामस्वरूप के पास आकर बैठ गया । उसने रामस्वरूप की ओर अच्छी तहर बारीकी से देखा । और फिर निवेदन किया - "मेरा नाम है गुरु प्रसाद । हम दोनों व्यापारी हैं । अंतर केवल इतना ही

राधा चावला

है कि मैं माल बेचने जा रहा हूँ और आप खरीदने । '' फिर गुरुप्रसाद हँस पड़ा ।

इस पर रामस्वरूप भी मुस्कुराते हुए बोला - "भाई, अंतर की बात करते हो तो तुममें हममें एक अंतर और भी है । मैं अपनी उमर के ५० साल काट चुका हूँ, तुम अभी खासे जवान हो । मेरे सिर पर कोई बोझ तो है नहीं, फिर भी दो कोस चलने पर मुझे काफ़ी थकावट महसूस हुई और मैं हाँफने लगा हूँ । तुम सिर पर यह भारी गठरी लेकर भी बड़ी सरलता से रास्ता चल रहे हो । ''

गुरुप्रसाद कुछ देर तक मौन रहा, फिर बोला - "हाँ, बात तो सही है ! इस उमर में आप अधिक परिश्रम भला क्यों उठाते हैं ? अपने किसी गुमाश्ते को हाट नहीं भेज सकते क्या ?"

रामस्वरूप ने जवाब दिया - "आज के ज़माने में किसी गुमाश्ते पर कोई क्या यकीन करें ? बीवी और बच्चों पर भी भरोसा करना आजकल मुश्किल है । ''

"इस का मतलब यह कि आप किसी पर विश्वास करने के लिए तैयार नहीं है । '' आश्चर्य से गुरुप्रसाद ने पूछा ।

"हाँ, भाई अपना तो यही ख्याल है ! दुनिया में ऐसा कोई व्यक्ति है, जो भला विश्वास करके पछताया न हो ? विश्वास का अच्छा फल किसको मिला है इस दुनिया में ?" रामस्वरूप पते की बात कहकर अपने आप पर खुश होता हुआ खिलखिला कर हँस पड़ा ।

"आप ने बात तो खूब कही ! इस उमर में इतनी दूर तक चलने पर आपके पैरों में दर्द तो

ज़रूर हो रहा होगा । आप बुजुर्ग हैं । मैं आप की कुछ सेवा करूँगा । ज़रा पैर बढ़ा दीजिए मेरी तरफ़ । '' कहते हुए गुरुप्रसाद ने अपने हाथ आगे बढ़ा दिये ।

रामस्वरूप ने झट अपने पैर पीछे खींचते हुए कहा - "इसकी कोई ज़रूरत नहीं है बेटा । थोड़ा आराम करने पर थकावट मिट जाएगी । ''

"आप ऐसा क्यों कहते हैं ? मैं आपकी सेवा करूँ तो मुझे मेहनताना देने की ज़रूरत नहीं है । मैं भी तो एक व्यापारी हूँ । स्वान्तःसुखाय मुझे आपकी सेवा करने दीजिए । ''कहते हुए रामस्वरूप के मना करने पर भी गुरुप्रसाद ने उसके पैर दबाना शुरू किया ।

रामस्वरूप को लगा कि उसकी थकावट

गायब हो रही है । इसलिए उस सुख में चुपचाप सेवा लेता रहा ।

गुरुप्रसाद दुनियादारी की बातें करते करते पैर दबाने के बाद क्रमशः कंधे और सिर दबाने लगा । अंत में गर्दन की नसों को दबाकर रामस्वरूप को उसने बेहोश-सा कर डाला । इसके बाद कमर में लपेटी रुपयों की थैली लेकर वहाँ से चलता बना ।

कुछ समय बाद रामस्वरूप होश में आ गया । अपनी कमर उसने टटोली, तो रुपयों की थैली गायब ! पागल की तरह इधर-उधर बेतहाशा दौड़ा । आखिर कुछ दूरी पर एक पेड़ के नीचे बैठे गुरुप्रसाद को देख उछलकर उसके पास पहुँचा और बोला – "अरे दुष्ट, दिन-दहाड़े दगा देते हो ? बताओ, मेरी रुपयों की थैली कहाँ है ? " यह कहते हुए उसने गुरुप्रसाद की गर्दन कस कर पकड़ ली ।

"ज़रा रुक जाओ मित्र, जल्दबाज़ी मत करो । यह रही तुम्हारी रुपयों की थैली । " कह कर गुरुप्रसाद ने रामस्वरूप को रुपयों की थैली सौंप दी ।

रामस्वरूप ने रुपये गिनकर देखे, एक रुपया भी कम न था । आश्चर्य करते हुए गुरुप्रसाद ने पूछा – "यह क्या तुम्हारी करतूत है, मैं समझता नहीं । "

गुरुप्रसाद ने कैफ़ियत दी – "बात बहुत सीधी-सादी है ! मैं तुम्हें एक प्रत्यक्ष पाठ पढ़ाना भर चाहता था । तुमने कहा था न कि तुम संसार में किसी पर भी विश्वास नहीं करते । लेकिन तुम ने मुझ जैसे एक अपरिचित आदमी पर विश्वास किया । सही है न ?"

रामस्वरूप ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी । तब गुरुप्रसाद ने अपनी गठरी सिर पर उठाते हुए कहा – "चलो, अब मैं चला । बुद्धिमान लोगों को चाहिए कि संसार के हर आदमी को चोर और दगाबाज़ नहीं समझना चाहिए । तुम ने कहा था कि गुमाश्तों तथा आत्मीय जनों पर भी विश्वास नहीं करते, लेकिन मुझ जैसे एक अजनबी पर विश्वास करके तुम अपने सारे रुपये खो बैठने का कारण हुए । ठीक है न ?"

रामस्वरूप ने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया और गुरुप्रसाद के साथ शहर की ओर चल दिया ।

जहरीली मछलियों की माँग
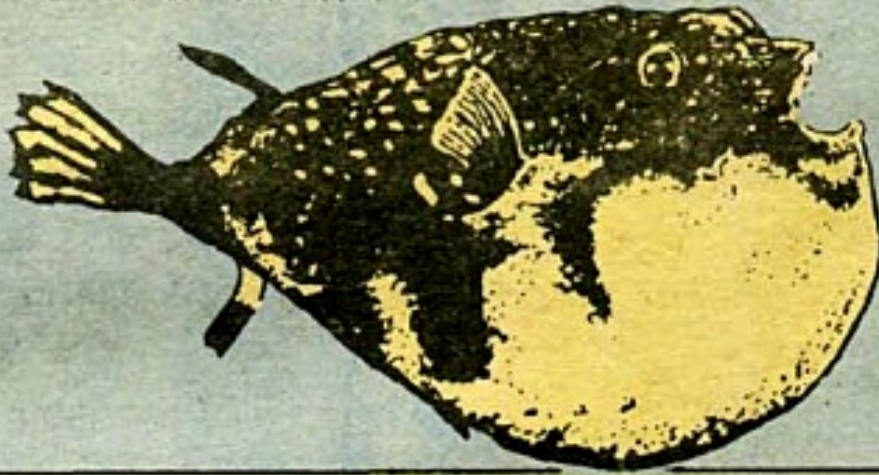
मछलियों में सबसे अधिक ज़हरीली मछली है बफरफिश । फिर भी यह अत्यन्त स्वादिष्ट होती है । इस कारण जापान में इस मछली की बड़ी माँग है । इस के विषपूर्ण अंग निकाल फेंक कर रसोई बनाने के लिये कुछ विशेष कुशल रसोइयों का बड़े बड़े शाही होटलों में प्रबन्ध किया जाता है । फिर भी जापान में खाद्य-पदार्थों के विषपूरित होने का प्रधान कारण यह बफरफिश मछली ही है ।

30,000 अण्डे

सफेद चींटियों की रानी प्रतिदिन ३०,००० अण्डे देती है, इस हिसाब से वह अपने जीवनकाल में लगभग पचास हज़ार करोड़ की सन्तति पैदा करती है ।

सहारा रेगिस्तान में रेतीले टीले अनेक हैं । उनमें कई एक टीले लगभग १,४१० फुट तक ऊँचे तथा तीन तीन मील लम्बे होते हैं ।

अपने शिशु को दीजिए सैरेलॅक का अनूठा लाभ

कीजिए ठोस आहार की आदर्श शुरुआत

४ महीने की उम्र से आपके शिशु को दूध के साथ-साथ ठोस आहार की भी ज़रूरत होती है. उसे सैरेलॅक का अनूठा लाभ दीजिए.

पौष्टिकता का लाभ : सैरेलॅक का प्रत्येक आहार आपके शिशु की आवश्यकता के अनुसार सारे पौष्टिक तत्व प्रदान करता है — प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, फैट, विटामिन तथा मिनरल, सभी पूरी तरह संतुलित.

स्वाद का लाभ : शिशुओं को सैरेलॅक का स्वाद बहुत भाता है.

समय का लाभ : सैरेलॅक पहले से ही पकाया हुआ है और इसमें दूध और चीनी मौजूद है. केवल इसे उबाले हुए गुनगुने पानी में मिला दीजिए.

पसंद का लाभ : तीन तरह के सैरेलॅक में से आप अपनी पसंद का चुन सकती हैं.

कृपया डिब्बे पर दिए गए निर्देशों का सावधानी से पालन कीजिए ताकि इसके बनाने में स्वच्छता रहे और आपके शिशु को संतुलित पोषाहार मिले.

मुफ्त! सैरेलॅक बेबी केयर बुक
लिखिये : सैरेलॅक, पोस्ट बॉक्स नं. 3
नई दिल्ली-110 008

सैरेलॅक का वादा : स्वाद भरा संपूर्ण पोषाहार

RK SWAMY/FSU/5112/HIN

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ अप्रैल १९८९ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

Anant Desai

M. Kanyakumari

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ फरवरी १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

दिसम्बर के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : खेलने की तैयारी !

द्वितीय फोटो : तैरने की बेकरारी !!

प्रेषक : अखिलेश मिश्रा, मेन रोड, जांजगीर (म. प्र.)-४९५ ६६८

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISHWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

Where finding out is fun

JUNGLE ADVENTURE

MEET SOMPONG THE SIAMESE BOY

The new monthly English children's magazine.
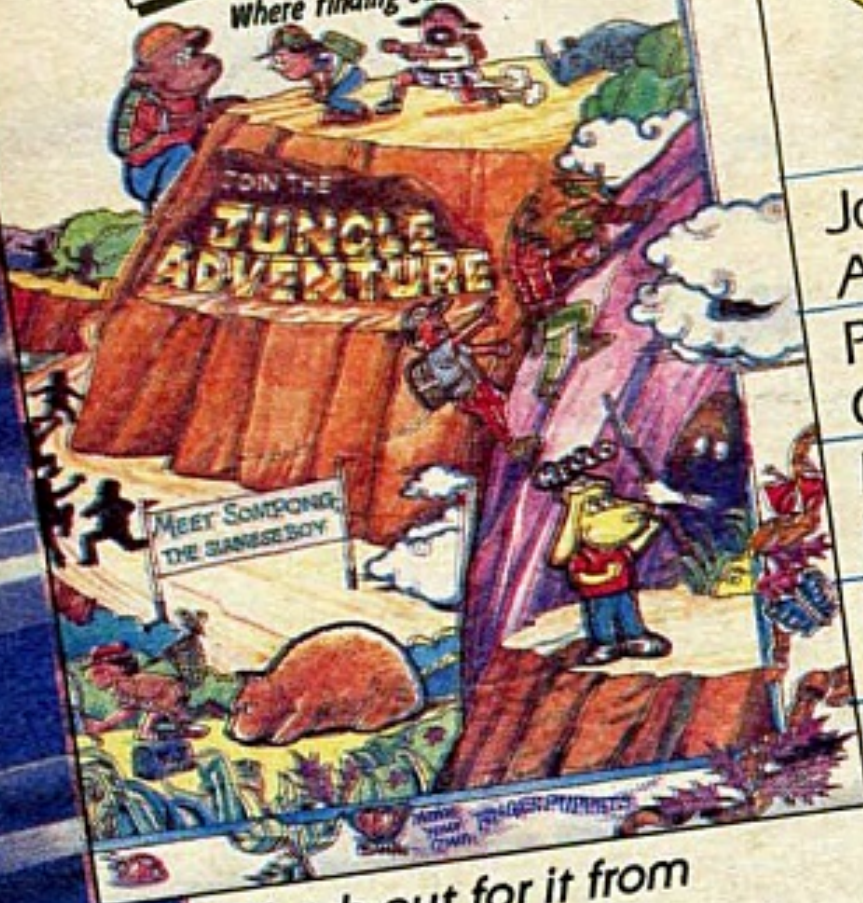
- Join the Jungle Adventure
- Play the Up-and-Down Classroom
- Meet Sompong, the Siamese Boy.
- Read about the Giant Panda

Price : Rs. 5

Watch out for it from February 1989!

A SUPER BARGAIN

A SUPER BARGAIN FOR OUR FIRST Subscribers . . . A Whole Year's Junior QUEST for Rs. 50/- only

HURRY NOW and Send Your Money order / Postal order / Demand Draft to M/s. DOLTON AGENCIES, CHANDAMAMA BUILDINGS, VADAPALANI , MADRAS 600 026

A Chandamama Vijaya Combines publication

No share prices,
no political fortunes, yet...

Over 40% of Heritage readers are professionals or executives, 61% from households with a professional / executive as the chief wage earner. Half hold a postgraduate degree or a professional diploma.

– from an IMRB survey conducted in Oct. 1986

It's an unusual magazine. It has a vision for today and tomorrow.
It features ancient cities and contemporary fiction, culture and scientific developments, instead of filmstar interviews and political gossip. And it has found a growing readership, an IMRB survey reveals. Professionals, executives and their families are reading The Heritage in depth – 40% from cover to cover, 42% more than half the magazine.
More than 80% of The Heritage readers are reading an issue more than once.
And over 90% are slowly building their own Heritage collection.
Isn't it time you discovered why?

CMR-2155

So much in store, month after month.